॥ श्रीहरिः ॥ 1908▲

प्रतिकूलतामें प्रसन्नता

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥ 1908

प्रतिकूलतामें प्रसन्नता

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
के प्रवचनोंसे संकलित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

निवेदन

मनुष्य-जन्म केवल भगवत्प्राप्तिके ही लिये मिला है, यह बात सभी शास्त्र और महापुरुष कहते हैं। परन्तु इस संसारकी चकाचौंधमें मनुष्य इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे अपने लक्ष्यका ध्यान ही नहीं रहता। श्रीमद्भागवतमें आया है कि गर्भमें मनुष्य जब आता है तब उसे अपने बीते हुए सौ जन्मोंके कर्मोंकी याद रहती है। वह भगवान्‌से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! मुझे गर्भसे बाहर निकालिये, मैं आपका स्मरण एवं भजन करूँगा। किन्तु इस प्रतिज्ञाको गर्भसे बाहर निकलकर यह मनुष्य भूल जाता है। प्रतिज्ञा भंग करना महान् पाप है। अपने जीवनका समय वह खाने-पीने और सोनेकी व्यर्थकी बातोंमें खर्च कर देता है। उन क्रियाओंमें उससे कितने पाप बनते हैं, इस ओर वह ध्यान ही नहीं देता। उन कर्मोंके फलस्वरूप उसे भविष्यमें महान् दुःखोंका भोग करना पड़ता है। इन सब बातोंको देखकर महापुरुषोंको बड़ी करुणा होती है। वे प्रयास करते हैं कि यह मनुष्य किस तरह भावी दुःखोंसे बचकर भगवान्‌की ओर दृढ़तासे लगकर भगवत्प्राप्ति कर ले एवं जन्म-मरणके चक्करसे छूट जाय।

श्रीजयदयालजी गोयन्दका भी एक ऐसे ही महापुरुष थे। उन्होंने मनुष्योंके कल्याणके लिये अथक प्रयास किया। गीताप्रेसकी स्थापना की ताकि आध्यात्मिक साहित्य सस्ते मूल्योंमें जनसाधारणको उसके कल्याणके लिये प्राप्त हो। वे स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें प्रतिवर्ष लगभग चार माह ठहरकर सत्संगकी व्यवस्था करते थे। आप स्वयं सत्संग कराते एवं अन्य महापुरुष और संतोंको बुलाकर सत्संग कराते थे। इसी प्रयासमें सन् १९४४ के लगभग वटवृक्ष स्वर्गाश्रममें उन्होंने जो प्रवचन दिये उन्हें किसी सत्संगी भाईने लिख लिया था। उन प्रवचनोंमें उन्होंने जो बातें बतायीं वे सभी हमें भगवत्प्राप्ति करानेवाली हैं। उन बातोंका इस पुस्तकमें संकलन किया गया है।

खास बात यह है कि उन्होंने हमें चेत कराया है कि सामने जो वृक्ष खड़े हैं इनका कारण इनकी मनुष्य-जन्ममें असावधानी रही। यदि हम भी असावधान रहे, भजन-साधन नहीं किया तो हमारी भी यही दशा होगी। घरमें कलह कालरूप है। प्रतिकूलतामें प्रसन्न रहनेसे बहुत शीघ्र भगवत्प्राप्ति हो सकती है। हमें मर्यादा एवं सभ्यतापूर्ण आचरण करना चाहिये। सत्यतापूर्वक व्यापार कितना लाभदायक है। भगवान्‌की विशेष दया माननेसे हर समय प्रसन्नता रह सकती है। हमें विश्वास है कि इनमेंसे एक प्रवचनके अनुसार भी अपना जीवन बना लें तो हमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

सभी पाठकोंसे विनम्र निवेदन है कि इन प्रवचनोंको मननपूर्वक जीवनमें लानेके उद्देश्यसे पढ़ें तो हमारा जीवन बहुत ऊँचा उठ सकता है। —प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१. भगवान्‌की विशेष दया माने	५
२. भगवन्नामकी महिमा	११
३. ध्यानकी विधि	१९
४. भगवान्‌की लगन लगावें	२७
५. महात्मा बनें	३६
६. कलहसे बचे, भक्ति करे	५१
७. साधककी क्रमशः उन्नति	५८
८. सच्चे व्यापारकी विशेषता और महापुरुषोंकी बातें	७७
९. प्रतिकूलतामें प्रसन्नतासे भगवत्प्राप्ति	१०४

भगवान्‌की विशेष दया माने

ईश्वरकी हम सबपर बड़ी भारी दया है। हमलोगोंके हृदयमें कभी ईश्वरके स्वरूपकी स्मृति होती है, कभी उनके नामकी स्मृति होती है, यह ईश्वरकी विशेष दया है। यों तो ईश्वरकी पद-पदपर दया है, किन्तु इस तरहके भाव पैदा होते हैं यह विशेष दया है। अपने मनमें कभी बुरी भावना हो तो उसे अपने स्वभावका दोष समझना चाहिये। अच्छी भावना हो उसे ईश्वरकी दया समझे। तभी मनुष्य बुरे कामसे बच सकता है, अच्छे काममें लग सकता है। राजा साहबने बताया—कल शामको जो वातावरण था, उससे बहुत शान्ति प्रतीत होती है। स्वामीजी महाराजकी बात भी चली थी। महाराजा साहबने कहा—शान्ति प्रसन्नताका व्याख्यान समय-समयपर हो तो बहुत लाभकी चीज है। शान्ति, प्रसन्नता साक्षात् ईश्वरका ही स्वरूप है। जाननेसे अधिक लाभ होता है, अन्यथा परमात्मा तो सबके हृदयमें हैं ही, बतलानेसे अधिक लाभ हो सकता है। यहाँ ज्ञान, समता, शान्ति, आनन्द आदि ईश्वरके भाव हैं, सब समय मौजूद हैं ही, किन्तु दृष्टि नहीं डालनेसे लाभ नहीं होता। बार-बार ऐसा भाव करना चाहिये कि प्रसन्नता, शान्ति और आनन्दकी बाढ़ आ रही है। इसी प्रकार ज्ञानमार्गमें इस तरहकी भावना करे कि संसार है ही नहीं, बिना हुए प्रतीत होता. है।

सगुणके विषयमें भगवान् साक्षात् विराजमान हो रहे हैं। हम उनकी छत्रछायामें हैं, वे आश्वासन दे रहे हैं कि तुम चिन्ता

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ल १, मंगलवार, संवत् २००१, दिनांक २०-५-१९४४, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

मत करो, वास्तवमें चिन्ता ही क्या है? अर्जुनको भगवान् आश्वासन दे रहे हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

भगवान् कहते हैं—तू शोक मत कर, मेरी शरण आ जा। मेरी कृपासे शाश्वत पदकी प्राप्ति हो जायगी। मैं सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा। हमारे मनमें यह भाव है कि मैं बड़ा पापी हूँ, भगवान् कह रहे हैं कि मैं मुक्त कर दूँगा, भगवान्की कृपाके सम्मुख आपके पाप कोई चीज नहीं हैं। यह भाव करें कि भगवान् यहाँ आकाशमें विराजमान हैं, हमारे ऊपर उनकी छत्रछाया है। वे कह रहे हैं तुम शोक मत करो। नेत्रोंसे देख रहे हैं, उससे हमारे ऊपर प्रेम, आनन्द, शान्ति और समताकी वर्षा हो रही है, उनके गुण हमारे रोम-रोममें प्रविष्ट हो रहे हैं, जिससे हमें रोमांच हो रहा है। प्रत्येक रोमसे राम-रामका उच्चारण हो रहा है।

जैसे हनुमान्जीके रोम-रोममें राम रम रहे थे। इस प्रकार धारण करे। शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोम हैं, सबसे इस प्रकार भगवान्के नामका उच्चारण हो रहा है, यह ऊँचे दर्जेका भजन है। इस ओर हमारा लक्ष्य जाना ही भजन है। इस प्रकार साधना करनी चाहिये। अहा! देखो कैसा आनन्द है? भगवान्की दयाका स्रोत बह रहा है। प्रेमके सागरमें ही मानो हमें डुबा दिया हो,

कैसा ज्ञान है? चिन्मय है। यह गुण समूह उस परमात्माके सगुण निराकार स्वरूपका है। हमलोगोंपर किसीकी दया है, वह परमात्माकी दयासे ही है। परमात्माकी दयासे ही सबकी दया है।

जा पर कृपा रामकी होई। ता पर कृपा करे सब कोई॥

प्रत्यक्ष बात है जिसपर परमात्माकी कृपा होती है, उसपर सब कृपा करते हैं। मेरेपर भी परमात्माकी कृपा है, इसलिये आप सब लोग कृपा करते हैं, वास्तवमें वक्ताको ऐसा ही समझना चाहिये। कोई भी वक्ता बन जाय, बात तो वास्तवमें भगवान्की है। सारे शास्त्र भगवान्के ही वचन हैं। आपका हमारा संयोग है, यह भी भगवान्की बड़ी कृपा है। इस प्रकारका संयोग भगवान्की कृपासे ही होता है। मूल दया ईश्वरकी माननी चाहिये। हर एक बातमें ईश्वरकी कृपाका दर्शन करके प्रसन्न होना चाहिये। हमारे ऊपर ईश्वरका हाथ है तो ईश्वर वहाँ हैं ही। भगवान्के स्वरूपकी ओर देखकर, उनके मुखकी ओर देखकर निर्भर होता रहे। फिर चिन्ता, भय एवं शोक पासमें नहीं आ सकते। यदि आते हैं तो वह बात आपके हृदयमें नहीं है कि भगवान् आश्वासन दे रहे हैं। भगवान्का मुखारविन्द खिला हुआ है, वे प्रसन्न हो रहे हैं, नेत्रोंके द्वारा दयाका विकास हो रहा है, हम सबपर उस दयाकी वृष्टि हो रही है। हम सब उसमें मग्न हो रहे हैं। प्रेम भी नेत्रोंसे जाना जाता है प्रेमकी, दयाकी, समताकी परीक्षा नेत्रोंसे ही होती है। नेत्रोंसे दर्शनके लिये ही गीताजीमें '**समदर्शन**', '**समं पश्यति**' शब्द आये हैं।

प्रेम ही आनन्द है। प्रत्यक्षमें जो आनन्द है, प्रसन्नता है, इसकी वर्षा प्रभुके नेत्रोंसे हो रही है। भगवान् स्वयं चिन्मय वस्तु

हैं। उसमें भी विशेष चेतनता नेत्रोंमें है। प्रभु ज्ञानका प्रभाव डाल रहे हैं, इससे हमारे रोम-रोममें ज्ञानकी दीप्ति हो रही है। सारे शरीर, मन, इन्द्रियोंमें—सबमें ज्ञान परिपूर्ण हो रहा है। रात-दिन हमारेमें गुण प्रविष्ट हो रहे हैं। भगवान् आकाशमें खड़े हैं, मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं, देख-देखकर मुग्ध और खूब प्रसन्न रहना चाहिये।

संसारमें जो कुछ विभूति है वह सब भगवान्‌की है। एक लौकिक कथा याद आ गयी। महाराजा विक्रमादित्य जब पधार गये, भोज राजा थे, तबकी बात है। एक ग्वाला अच्छा न्याय करता था। कोई न्याय कराने आता तो वह उसे एक टीबड़ीपर ले जाता। राजा भी जिस न्यायको नहीं कर सकता, उसे वह कर देता। एक समय राजाके पास ऐसा न्याय आया कि वह नहीं कर सका। एक स्त्रीको उसका पति ले जा रहा था। बुधने आकर उसके पतिका स्वरूप धारण कर लिया, कहा—यह स्त्री तो मेरी है। न्यायके लिये राजाके पास गये, किन्तु राजा निर्णय नहीं कर सका। वे ग्वालेके पास आये, कहा तू न्याय कर दे। ग्वाला उन्हें टीबड़ीपर ले गया। एक लोटा रख दिया और कहा—इसमें कौन प्रवेश करेगा? बुधजी प्रवेश कर गये। वे ही नकली बने थे। ग्वालेने कहा—इसकी पत्नी नहीं है, जिसकी थी उसको दिला दी, न्याय कर दिया। राजाके पास सूचना गयी कि ग्वालेने न्याय कर दिया। राजाने बुलाया, पूछा—कैसे किया? ग्वालेने सारी बात बता दी। राजाने और भी कई न्याय कराये। राजाको बहुत सन्तोष हुआ। उस जगहकी राजाने खुदाई करायी, उस जगह वीर विक्रमादित्यका सिंहासन निकला। राजा उस सिंहासनपर बैठने लगा। इसमें इतना सारांश लेना है कि विक्रमादित्य इतने प्रभावशाली

थे कि उनके सिंहासनमें इतना प्रभाव हो गया कि उसपर कोई बैठकर न्याय कर दे। वे परदु:खभंजनहार थे, इसलिये उनका ऐसा प्रभाव हो गया।

बात थी स्थानकी प्रधानताकी, यहाँ हम लोग बैठे हैं, यहाँ शान्ति प्रतीत हो रही है, यह तीर्थस्थानकी महिमा है। श्रोताओंकी महिमा है, उनके भावकी महिमा है। आपलोगोंमें उत्कट इच्छा होगी, साक्षात् महात्मा नहीं मिलेंगे तो भगवान् महात्माका रूप धारण करके हमें शिक्षा दे सकेंगे या एक साधारण पुरुष ग्वालेकी तरह हमें शिक्षा दे सकेंगे।

कागभुशुण्डिजी जिस जगह रहते, वहाँ एक योजनतक मायाका कटक नहीं आ सकता था। गरुडजी जिस कामसे आये, वह काम तो आश्रमके दर्शनसे ही हो गया। वहाँ स्थानकी भी प्रधानता थी और कागभुशुण्डिजीकी तथा गरुडजीके भावकी भी थी।

अर्जुनसे भगवान्‌ने कहा कि ये सब मेरे द्वारा मारे हुए हैं, तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा। तू युद्ध नहीं करेगा तो भी वह सब मारे जायँगे। तू कहता है मैं युद्ध नहीं करूँगा तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है। भगवान्‌की शक्ति ही सब काम कर रही है। जब भगवान् परम धाम पधार गये, वही अर्जुन और वही गाण्डीव था, डाकुओंने लूट लिया। भगवान्‌ने दिखा दिया कि सारी शक्ति भगवान्‌की ही थी। कभी अहंकार आ जाता है तो भगवान् वहीं थप्पड़ मारते हैं। यह भी उनकी कृपा ही है।

हमें जो कुछ लाभ होता है वह भगवान्‌की कृपासे ही होता है। हम भगवान्‌के सामने गद्‌गदभावसे रोयें, प्रार्थना करें तो सफलता मिल सकती है। क्योंकि प्रभुके सामने की गयी प्रार्थना नष्ट नहीं होती। बीज डालकर उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।

जड़ पृथ्वी भी अपने पेटमें बीज नहीं रखती, तब क्या भगवान् रख सकते हैं। हमारे हृदयमें जो सद्भाव पैदा होते हैं, वह भगवान्की कृपासे ही होते हैं, हम प्रभुपर निर्भर रहें, भगवान् स्वयं जो कुछ हमारे लिये कर रहे हैं बहुत ठीक कर रहे हैं। आपकी दृष्टि उनकी दयाकी ओर रहेगी तो उत्तरोत्तर आपके प्रसन्नता रहेगी। आप अपने साधनको उत्तरोत्तर उन्नत देखेंगे। प्रभुकी दयाका सागर यहाँ ओतप्रोत हो रहा है। हमलोग उनकी दयाके पात्र हो गये, तभी तो मनुष्य-शरीर मिला है। ऐसे स्थानमें हमलोग आ गये, जो साक्षात् मुक्ति देनेवाला है, फिर भगवत्चर्चा भी मिल गयी, इससे बढ़कर और क्या दया होगी। ऐसी परिस्थिति पाकर भी हम भगवत्प्राप्तिसे वंचित रह जायँ तो तुलसीदासजी कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

जो ऐसे संयोगको पाकर भी भवसागरसे नहीं तरता, वह निन्दाका पात्र है। तुलसीदासजीने यह बात इसलिये कही कि इस प्रकारका संयोग प्राप्त हो जानेपर भगवत्प्राप्ति हो ही जाती है। अतः तत्परतापूर्वक लगकर भगवत्प्राप्ति कर लेनी चाहिये।

नारायण　　नारायण　　नारायण

भगवन्नामकी महिमा

भगवान्‌के नामका प्रभाव क्या है? नामके जपसे सारे पापोंका, दुर्गुणोंका नाश हो जाता है। नामकी महिमा बहुत है। नामसे सारे दुःखोंका नाश हो जाता है। इतना ही नहीं, स्वयं भगवान् प्रकट हो जाते हैं। नामजपसे बहुत-सी बातें हमें मिलती हैं। परमात्माकी प्राप्ति, सुख शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् उसके वशमें हो जाते हैं। यह भगवान्‌के नामका ही प्रभाव है। पवनसुत हनुमान्‌जीने भगवान्‌के नामका जप करके भगवान्‌को अपने अधीन बना लिया। नामके अधीन नामी है ही। मैं मार्गमें जा रहा हूँ, कोई मुझे पुकारता है तो मैं झट खड़ा हो जाता हूँ। भगवान् भक्तोंके अधीन हो ही जाते हैं। यह नामका ही प्रभाव है। अजामिल, गज, गणिका एवं बड़े-बड़े पापी भी नामके प्रभावसे तर गये। यह नामके जपका प्रभाव है। भगवान्‌के नामका जप करनेसे बिना प्रयत्न और बिना प्रयासके मनुष्य भक्त हो जाता है। इस प्रकार नामका प्रभाव जगह-जगह भरा हुआ है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है, क्योंकि

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ल २, बुधवार, संवत् २००१, दिनांक २१-५-१९४४, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

भगवान् कहते हैं—जो मेरा भक्त है, मेरा भजन करता है, अनन्यभावसे भजन करनेवाला है, चाहे पापी ही क्यों न हो, वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है। यह निश्चय समझो कि मेरे भक्तका नाश (पतन) नहीं होता। यह नामका प्रभाव, नामका माहात्म्य और नामकी महिमा है। नाममें गुण भरे पड़े हैं। क्षमा, शान्ति, समता, दया, सन्तोष, सरलता, विनय आदि बहुत-से गुण हैं; नामजपसे अपने आप ही हृदयमें गुणोंके समूहका प्रादुर्भाव होता है; जैसे—जल निचले स्थानमें अपने आप ही इकट्ठा होता है, इसी प्रकार भगवान्के नामकी यह महिमा है। आप रात-दिन भजन करते रहें, सारे गुण आपमें अपने आप ही आ जायँगे। जैसे भगवान् गुणोंके सागर हैं, ऐसे ही भगवान्का नाम गुणोंका सागर है। भजन करनेसे ही सब पापोंका नाश हो जायगा, जो भाई ऐसा मानता है, वह नामके रहस्यको समझा ही नहीं। नामकी महिमा अवश्य ऐसी है कि उससे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, किंतु इस सिद्धान्तको रखकर जो पाप करता है उसके पाप नष्ट नहीं होते, अपितु उसके पाप वज्रलेप हो जाते हैं। यदि ऐसी ही बात हो कि पाप करके फिर नाम जप कर लें और पापोंको नष्ट करते रहें तो फिर भगवान्का नाम तो पापोंकी वृद्धिमें हेतु ही बना। इस प्रकार जो नामका दुरुपयोग करता है, नाम ऐसे पापीकी सहायता नहीं करता। जो इस उद्देश्यसे पाप करता है कि

नामजपसे पापको धो डालूँगा, वह नामके रहस्यको नहीं जानता। एक व्यक्तिको राजाने यह अधिकार दे दिया कि किसीको फाँसी होती हो तो वह बचा सकता है। उस आदमीका दामाद बड़ा बदमाश था। उसने हिंसा, चोरी और व्यभिचार करना प्रारम्भ कर दिया। पिताने बेटीको बुलाकर समझाया कि अपने पतिको समझा दे कि उद्दण्डता न करे, अन्यथा फाँसी हो जायगी। पतिने उसको भी डाँट दिया। लड़कीने पितासे आकर कह दिया। पिताने कहा—तेरे भाग्यमें दुःख लिखा है। उसका साहस और बढ़ गया। दिनमें डाके डालने लगा। लोगोंने उसपर कई केस किये, प्रमाणित भी हो गये। न्यायाधीशने उसको फाँसीका आदेश दे दिया। जब फाँसीका आदेश हो गया तो उसने अपनी स्त्रीसे कहलाया कि अपने पितासे कह दे कि अमुक दिनांकको मुझे फाँसी होनेवाली है, उससे बचा दें, अन्यथा तू विधवा हो जायगी। पिताने कहा कि बेटी मैंने तो तेरेसे पहले ही कहा था, परन्तु उसने माना नहीं। मैं अपनी शक्तिको अनुचित काममें नहीं ला सकता। राजासे अधिकार इसलिये नहीं मिला है कि अन्यायकी वृद्धि हो। आखिर उसे फाँसी हो गयी। शक्ति रहते हुए भी उसने अधिकार काममें नहीं लिया। इसी प्रकार नामकी सामर्थ्य है, नाम सब कुछ कर सकता है, किन्तु ऐसे पापियोंको नाम नहीं बचाता। नामकी महिमा कम नहीं है। वह यदि इस प्रकार फाँसी बचा देता तो शायद उसका अधिकार आगे जाकर छिन जाता। नामकी महिमा छीनी नहीं जा सकती, किंतु नाम इसलिये नहीं बचाता, क्योंकि नाम पापोंकी वृद्धिके लिये नहीं है। यह छिपा हुआ रहस्य है। भगवान्‌के नामका इतना प्रभाव है कि सारे दुर्गुणोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति करा देता है। नाममें गुण भरे पड़े हैं। जो

भगवान्‌के नामका जप करता है उसमें सारे गुण आ जाते हैं।

बलि भगवान्‌का भक्त था, सदाचारी एवं धर्मात्मा था। उससे भगवान् राज्य क्यों छीन रहे हैं, इसमें रहस्य है। बात यह है कि बलि तो धर्मात्मा था, किंतु और राक्षस धर्मात्मा नहीं थे। इसलिये भगवान्‌ने देखा कि तीनों लोकोंका राज्य देवताओंके हाथमें रहना चाहिये, राक्षसोंके हाथमें नहीं। विष्णु भगवान् वामन रूप धारण करके बलिके पास गये। बलिने उनका सत्कार किया, पूजा की और कहा कि आपने यहाँ आकर हमारे घरको पवित्र कर दिया। भगवान्‌ने तीन पग पृथ्वी माँगी। शुक्राचार्यजीने कहा—ये वामन रूप धारण करके साक्षात् परमात्मा तुम्हें धोखा देनेके लिये आये हैं, तुम दान मत दो। बलिने कहा—एक बार कह दिया, उसे अब मना किस प्रकार कर सकता हूँ और जिनके दर्शनोंके लिये शिव आदि देवता तरसते हैं, वे परमात्मा मेरे घर आये, मेरे लिये इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या होगी। भगवान्‌ने दो पैरसे सारी त्रिलोकी नाप ली, तीसरा पैर बलिके ऊपर रखा। ऊपरमें तो बात है तीन पग पृथ्वीकी, भीतरमें यह बात है कि सारी त्रिलोकीका राज्य ले लेना। यदि कहो कि यह तो कपट है? हमलोगोंके लिये तो कपट है, किन्तु भगवान्‌के लिये कपट नहीं, अपितु रहस्य है। भगवान्‌ने बलिका कल्याण कर दिया। बलिके मस्तकपर भगवान्‌ने पैर रखा। इसके रहस्यको न इन्द्र समझता है न कोई और। बलि तो मुक्त हो गया। इन्द्र राजपद पाकर प्रसन्न हो रहे हैं और भगवान् बलिको दे रहे हैं परमपद।

जिस महात्माके हृदयमें अहंकार नहीं है, जिसकी बुद्धि पापोंमें लिपायमान नहीं है, वह सारी दुनियाको मारता हुआ भी नहीं मारता। देखनेमें यह आता है कि पाप करता है, किन्तु पाप

नहीं है। कारण उसमें स्वार्थ नहीं है। जितने पाप होते हैं स्वार्थसे होते हैं। इस गंगामें गाय आ गयी, मुर्दा आ गया, सबको बहाकर ले जाती है, आसक्ति नहीं है, न अहंकार ही है, फिर गंगाको पाप किस प्रकार लगे। इस प्रकार जो गंगाकी तरह विचरता है, उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है, न उसे कोई दण्ड ही है। जब स्वार्थ नहीं रहता तो कर्म बाँध नहीं सकते, इसलिये वामन भगवान्‌ने जो यह कर्म किया, यह क्रिया तो कपट की थी, किन्तु कपट नहीं है, रहस्य है, जिसमें स्वार्थ हो वह तो कपट है और जो उसके हितके लिये की जाय, वह कपट नहीं है रहस्य है। माँ बच्चेके हितके लिये दूधमें दवा मिलाकर देती है, क्रिया छिपावकी होते हुए भी यह कपट नहीं है। माँका स्नेह है और बालकका उसमें हित है।

सारे गुणोंका समूह उस सगुण भगवान्‌के एक अंशमें है। इतने गुण हैं जिनकी हम गिनती ही नहीं जानते। प्रेमकी तो भगवान् मूर्ति ही ठहरे, जिनके दर्शनसे प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। क्षमा, शान्ति, समता-एक-एक गुणकी बात देखो, उनकी सीमा ही नहीं है।

एक बार देवता और मुनि इकट्ठे हुए। प्रश्न उठा कि सबसे बढ़कर क्षमा किसमें है। भृगुजीने कहा—मैं परीक्षा लेता हूँ। वे ब्रह्माजीकी सभामें गये। ब्रह्माजी उनके पिता थे। भृगुजीने उन्हें प्रणाम नहीं किया। ब्रह्माजीने उन्हें उलाहना दिया। तत्पश्चात् ये कैलास पर्वतपर अपने बड़े भाई रुद्रदेवके पास पहुँचे। अपने छोटे भाई भृगुको आते देखकर वे बड़े प्रेमसे आलिंगन करनेके लिये आगे बढ़े, परन्तु भृगुने यह कहकर कि 'तुम उन्मार्गगामी हो'—उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। भगवान् शंकरको बड़ा

क्रोध आया और वे त्रिशूल उठाकर इन्हें मारनेके लिये दौड़े। अन्ततः पार्वतीने उनके चरण पकड़कर प्रार्थना की और क्रोध शान्त किया। अब भगवान् विष्णुके यहाँ गये, भगवान् सो रहे थे। भृगुजीने कहा—देखो मैं आया हूँ और यह सो रहा है। यह कहकर भगवान्के हृदयमें खूब जोरसे लात मारी। भगवान् उठे और उनके चरण पकड़ लिये, कहा—महाराज! आपके चरण कोमल हैं, मेरा हृदय कठोर है, आपके चोट लग गयी होगी। भृगुजीने निर्णय किया कि भगवान् विष्णु सबसे श्रेष्ठ हैं। भगवान्में कितनी क्षमा है कि बिना अपराध भी कोई मारे तो सहनेको तैयार हैं। संसारमें जितने गुण हैं वे भगवान्के एक अंशमें हैं। प्रभावकी बात क्या कही जाय, वे असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। यावन्मात्र संसारमें जो कुछ प्रभाव है भगवान् कहते हैं मेरे एक अंशमें ही है।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

(गीता १०। ४१)

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिव्यक्ति जान।

अब क्या प्रभाव बताया जाय? पारसका क्या मूल्य हो सकता है। उसका मूल्य हो भी जाय, किन्तु भगवान्का प्रभाव कैसे बताया जा सकता है। भगवान्की सुन्दरताको देखकर रति और कामदेव लज्जित हो जाते हैं। पशु-पक्षी भी उनके मोहनी रूपको देखकर मोहित हो जाते हैं।

भगवान्का रहस्य क्या है? भगवान् जिसे जनाना चाहते हैं

वही उन्हें जानता है। उन्हें जानना बड़ा कठिन है। ब्रह्मादि देवता भी मोहित हो जाते हैं। भगवान् बाललीला करते हैं। ब्रह्माजीने सोचा कि ये भगवान् नहीं हो सकते, परीक्षा करके देखा, ब्रह्माजी फेल हो गये। पार्वतीजीने भी परीक्षा की। गरुडजी भी नहीं जान सके। जिसपर भगवान्‌की कृपा होती है, वही उन्हें जान सकता है। भगवान् इस प्रकार छिपकर आते हैं कि बलि भी उन्हें नहीं जान सके, शुक्राचार्यजीने बताया कि ये भगवान् हैं।

भगवान्‌का शरीर और भगवान्‌का धाम दोनों ही चिन्मय हैं। भगवान्‌का धाम निर्विकार है। वहाँ जरा, मृत्यु और बीमारी कुछ भी नहीं है। वहाँ कोई दुःख, पाप नहीं है। भगवान्‌का धाम सारे दोषोंसे रहित है। वहाँ सदा ही प्रसन्नता, आनन्द, प्रेम और समता है। भगवान्‌का धाम गुणोंका ही धाम है। जो दिव्य गुण भगवत्-प्राप्त पुरुषमें देखे जाते हैं, वे दिव्य गुण भगवान्‌के परमधाममें पहलेसे ही मौजूद हैं। वहाँ दया, क्षमा, शान्ति और समता प्रत्यक्ष विद्यमान है और प्रभाव तो अलौकिक है। भगवान्‌के धाममें चार प्रकारकी मुक्ति मिलती है—सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य और सारूप्य। यह धामकी महिमा है। ये सब बातें सुनकर और पढ़कर कथन करें, फिर एकान्तमें बैठकर इन सबका मनन करें, दूसरा कोई भाई मिल जाय तो आपसमें आलोचना करें। मनन करके फिर उस परमात्माका ध्यान करें। इस प्रकार करनेसे आपके हृदयमें उत्तरोत्तर श्रद्धा, प्रेमकी वृद्धि होती जायगी। उससे फिर आपके शान्ति, आनन्दका पारावार नहीं रहेगा। शान्ति और आनन्द परमात्माका स्वरूप ही है। हम भगवान्‌का ध्यान करें तो समझना चाहिये कि भगवान् आकाशमें खड़े होकर सारे गुणोंको हमारेमें प्रवेश करा रहे हैं, फिर क्या

आलस्य विक्षेप आ सकते हैं? किसी प्रकारके अवगुण और पाप वहाँ रह नहीं सकते। कागभुशुण्डिजीके आश्रमके एक योजन तक मायाका विकार नहीं होता था, माया और मायाका परिवार ये सब-के-सब अन्धकारमें ही रहते हैं। जहाँ ज्ञानकी दीप्ति होती है, वहाँ ये नहीं रहते। चेतनताकी इतनी जागृति पैदा हो जाती है कि रोम-रोममें चेतनता जाग उठती है। शान्ति, आनन्दकी सीमा नहीं रहती, वह तो अपनेको ज्ञानमय, आनन्दमय देखता है।

प्रश्न—निरन्तर ध्यान कैसे रह सकता है?

उत्तर—प्रेमपूर्वक नामके जपसे, संसारमें वैराग्यसे तथा उत्कट इच्छा होनेसे निरन्तर ध्यान रह सकता है।

सुधन्वाने अर्जुनका घोड़ा यह समझकर पकड़ा कि अर्जुनको मैं हरा दूँगा, वह भगवान्‌को बुलायेगा, भगवान् आयेंगे और मुझे उनके दर्शन हो जायँगे। विलम्बसे आनेके कारण उसे तेलके कड़ाहेमें डाला गया, पर भगवान्‌के ध्यानके प्रतापसे तेल भी उसे चन्दन-सा शीतल प्रतीत हो रहा है। सुधन्वाको कड़ाहेसे निकाला गया। युद्ध प्रारम्भ हुआ, सुधन्वाने अर्जुनको हरा दिया, अर्जुनसे कहा—अपने सखाको बुलाओ। अर्जुनने भगवान्‌से प्रार्थना की, भगवान् उसी समय आ गये। सुधन्वा भगवान्‌की स्तुति करने लगा। उसका प्रेम था, उत्कट इच्छा भी थी, इस कारण उससे भगवान्‌का ध्यान नहीं छूट सका, तेल उसे जला नहीं सका। हमें हर समय भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

नारायण नारायण नारायण

ध्यानकी विधि

बहुत-सी माताएँ नयी आयी हैं, उनसे प्रार्थना है कि मौन रहकर व्याख्यान सुनें। सत्संगमें बात करनेसे उन्हें पाप लगता है। तुलसीदासजीने कहा है—

तुलसी हरिकी लगनमें यह पाँचों न सुहात।
विषयभोग निद्रा हँसी जगतप्रीति बहुबात॥

कोई बात करनी हो तो थोड़ी दूर अलग जाकर करें, दूसरेके तो नुकसान नहीं पहुँचावें। आपके नुकसान हुआ, दूसरेके तो नहीं पहुँचावें। दूसरेके नुकसान पहुँचानेके समान कोई पाप नहीं है। आये तो गंगा स्नानके लिये और यहाँसे पाप बाँधकर ले जाओगे। हर एक स्त्रीको ध्यान रखना चाहिये कि यहाँ रहकर मौन रहे। एक दूसरी स्त्रीको शिक्षा देकर सिखा दे, इसका बड़ा पुण्य है। तुलसीदासजी कहते हैं—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

भाई लोग पहरा देते हैं। उनका यही कर्तव्य है कि कोई स्त्री बात करती हो तो उसके पैरों पड़कर बन्द करवा दें।

अब भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। ध्यानके लिये पहले आसन लगाना चाहिये। आसनके लिये भगवान्‌ने बताया है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

(गीता ६। ११)

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ल ३, बृहस्पतिवार, संवत् २००१, दिनांक २२-५-१९४४, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

शुद्ध भूमिमें, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछा है, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसनको स्थिर स्थापन करे।

यह देश बड़ा पवित्र है। गंगाजीकी रेणुकाका आसन बड़ा ही सुन्दर और पवित्र है। यह सबसे बढ़कर पवित्र आसन है, इसपर हमलोग बैठे हुए हैं ही। एक दूसरेको स्पर्श न करें, आसन लगाकर बैठें। भगवान् कहते हैं—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

(गीता ६। १३)

काया, सिर और गलेको समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओंको न देखे।

ग्रीवा और शरीरको सीधा करके बैठे, मेरुदण्डको सीधा कर ले, इससे आलस्य, निद्रा नहीं आते। आलस्यके नाशके लिये आसनसे बैठना चाहिये। फिर यह भावना करनी चाहिये कि भगवान् सब जगह निराकार रूपसे सदा ही विराजमान हैं, वे ही साकार रूपसे प्रकट होते हैं। सृष्टिके पहले सारी चीजें निराकार ही थीं, पीछे साकार रूपसे प्रकट हुईं। निराकार भगवान् हम सबके हृदयमें विराजमान हैं। भगवान्ने कहा है—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

(गीता १५। १५)

मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और संशयका नाश होता है और सब

वेदोंद्वारा मैं ही जाननेके योग्य हूँ तथा वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ।

भगवान् ही हमारे हृदयमें ज्ञान, स्मरण शक्ति और विवेक देते हैं। जब प्रेम हो जाता है तब वे ही भगवान् साकार रूपमें प्रकट होते हैं। यह बात तुलसीदासजीने बतायी है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

जहाँ-जहाँ भगवान् प्रकट हुए हैं, प्रेमसे ही प्रकट हुए हैं। वे परमात्मा निराकार रूपसे यहाँ सब जगह हैं। कैसे हैं? आनन्द रूपसे हैं, नेत्र बंद करके समझना चाहिये कि हमारे चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण हो रहा है। वह आनन्द ही ज्ञान है। वह चिन्मय आनन्द है, उस आनन्दको अपने आपका ज्ञान है। हमारे शरीरमें, रोम-रोममें जब कभी जागृति दीखती है, वह परमात्माका चेतन स्वरूप है। ज्ञान, चेतन और आनन्द एक ही चीज है। इसी प्रकार इस आनन्दकी खोज करें तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। भगवान् कहते हैं जो मेरा प्रेमसे भजन करता है, उनके हृदयमें मैं और वे मेरे हृदयमें रहते हैं। सूर्यका प्रकाश सर्वत्र समान है, किन्तु सूर्यमुखी शीशा सूर्यकी किरणोंको आकर्षित करके आग प्रकट कर देता है। इसी प्रकार जिसमें श्रद्धा प्रेम होता है, वह भगवान्‌को आकर्षित कर लेता है।

भगवान्‌का हृदयसे आवाहन करना चाहिये। हृदयसे की हुई पुकार भगवान्‌के यहाँ बेतारके तारकी तरह पहुँच जाती है। यह युक्तिसंगत बात है। जब एक दिन शेष रह गया और भगवान् नहीं पहुँचे, तब भरतजीने आवाहन किया कि भगवान् क्यों नहीं आये? जो भाव भरतजीके पैदा हुआ, वही उधर भगवान् रामके हृदयमें भी पैदा हुआ। विभीषणने भगवान् रामसे कहा कि थोड़े

दिन आप यहाँ और ठहरें। भगवान् रामको उस समय भरतजीकी याद आ गयी। कहा—तुम्हारा जो कुछ है वह मेरा ही है, किन्तु मुझे भरत याद आते हैं। तुम मुझे शीघ्र अयोध्या पहुँचाओ। मैं यदि अब रुकूँगा तो भाई भरतको नहीं देख सकूँगा। जिस प्रकार भरतजी महाराजने भगवान्‌को याद किया, पहले हनुमान् आये, फिर भगवान् आये। कहीं-कहीं भगवान् किसी दूसरेको भेजते हैं, कहीं-कहीं स्वयं आ जाते हैं, तुरन्त प्रकट हो जाते हैं; जैसे—गजेन्द्र, द्रोपदीके पुकारनेपर प्रकट हो गये, प्रह्लादके लिये खम्भसे प्रकट हो गये। हमें आवाहन करना चाहिये। प्रभो साक्षात् आप दर्शन नहीं दे सकें तो ध्यानमें तो आपको आना ही चाहिये। ध्यान करना तो साधारण बात है। जो भाई कहते हैं हमारा ध्यान नहीं लगता, वे वास्तवमें ध्यान करते नहीं हैं। चौबीस घंटेमें एक घण्टा भी आप ध्यानके लिये समय नहीं लगायेंगे तो ध्यान किस प्रकार लगेगा। आपका यह कहनेका अधिकार ही क्या है कि ध्यानके लिये अभ्यास किया, ध्यान नहीं लगा। ध्यान तो आपका संसारमें लगा हुआ है, भगवान्‌की ओर किस प्रकार लगे? दो बात किस तरह हो।

कबिरा मन तो एक है भावे जहाँ लगाय।
चाहे हरिकी भक्ति कर चाहे विषय गमाय॥

कबीरदासजी कहते हैं कि मन तो एक है, चाहे हरिकी भक्ति करे, चाहे उसे भोगोंकी ओर लगा दे। भोगोंकी ओर तो स्वतः ही लगा हुआ है, भगवान्‌की ओर लगाना चाहिये। उसके लिये ध्यानयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग साधन बतलाये हैं। कबीरदासजीने कहा है—

मन फुरनासे रहित कर जौने विधिसे होय।

चित्तको फुरनासे रहित बनाना चाहिये। इसीके लिये भगवान्‌के ध्यानकी बात बतलायी है।

भगवान् ठीक समयपर नहीं पहुँचे। तब भरतजी विचार करने लगे—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

भरतजी विलाप कर रहे हैं। आप दासोंके दोषकी ओर नहीं देखते, कारण आपका स्वभाव कोमल है, आप दीनोंके बन्धु हैं, इससे विश्वास होता है कि आप अवश्य मिलेंगे।

इसी प्रकार हमें भी प्रार्थना करनी चाहिये। आप दयालु हैं और हम दीन हैं। हमारे आचरणोंकी ओर नहीं देखकर आप अपनी ओर देखिये। भरतजीकी प्रार्थनासे भगवान् आकर सबसे एक साथ मिल लिये, इसका भेद कोई नहीं जान पाया। इसी प्रकार हम भगवान्‌का ध्यान करें तो भगवान् सबके ध्यानमें एक साथ आ सकते हैं, किन्तु भाव होना चाहिये। हम और तो कुछ चाहते नहीं, केवल ध्यान ही चाहते हैं। भगवान्‌से जो चाहे, भगवान् उसे वही देते हैं। शरीरमें जो जागृति हो रही है, यह भगवान्‌की कृपा है। इसी तरह प्रार्थना करे और भगवान् आ जायँ तो कितना आनन्द हो। भरतजी भी भगवान्‌के विरहमें व्याकुल हो गये, विलाप करने लगे तो भगवान् आ गये। कितना आनन्द हुआ। इसीलिये हमें भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये।

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

हे नाथ! मैं सब साधनोंसे हीन हूँ, आपने दीन जानकर कृपा की है, जो आपने दर्शन दिये। भगवान् मानो आकाशमें आ गये हैं। उनका प्रकाश कितना शान्तिमय है। भगवान् साक्षात् चतुर्भुज रूपसे आये हैं, मंद-मंद हँस रहे हैं। सारा शरीर नील वर्ण होते

हुए भी सफेद-से दीख रहे हैं। उनके चरण बड़े ही कोमल हैं, चमक रहे हैं, छूनेसे सारे शरीरमें रोमांच होने लगता है, आनन्द समाता नहीं। जैसे भगवान्‌के चरण हैं, वैसे ही घुटने और जंघाएँ हैं, नूपुरोंकी झंकार बड़ी ही मधुर है। रेशमी पीत वस्त्र हैं। भुजाएँ लम्बी हैं, दो ऊपरकी ओर हैं तथा दो नीचेकी ओर लटक रही हैं। नीचेकी दो भुजाओंमें गदा, पद्म हैं, ऊपरकी दोनों भुजाओंमें शंख, चक्र हैं, अँगूठी पहने हुए हैं, यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। गलेमें अनेक तरहकी मालाएँ पहने हुए हैं। रत्नजटित हार, कौस्तुभमणि धारण कर रखी है, हृदयपर लक्ष्मीजीका चिह्न है। लक्ष्मीजी भगवान्‌को हृदयमें रखती हैं, इसलिये भगवान् भी उन्हें अपने हृदयमें रखते हैं। उनकी ग्रीवा, ठोडी सुन्दर हैं, होठ चमक रहे हैं।

दाँतोंकी पंक्ति मानो मोतियोंकी पंक्ति हो। मन्द-मन्द हँस रहे हैं। मुखारविन्द गुलाबके पुष्पकी तरह खिला हुआ है। ऐसी वाणी बोलते हैं जो कानोंको मोहित करनेवाली है। कानोंमें मकराकृत कुण्डल है। नेत्र गुलाबके पुष्पकी तरह खिले हुए हैं। नेत्रोंसे ज्ञानकी वर्षा कर रहे हैं। लोगोंके शरीरमें, रोम-रोममें ज्ञानकी जागृति हो रही है, गुणोंका स्रोत बहा रहे हैं, हमलोग मग्न हो रहे हैं। भगवान्‌के नेत्रोंसे दया, ज्ञान, समता बरस रही है। दया, प्रेम, ज्ञान एवं आनन्द मानो साक्षात् मूर्तिमान् होकर उनके नेत्रोंमें विराजमान हो रहे हैं। भौंहें सुन्दर हैं, मस्तक चमक रहा है। मस्तकपर श्रीधारी तिलक है, सुन्दर केश चमक रहे हैं, रत्नजटित सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है। वह चन्द्रमाकी तरह चमक रहा है। सारा शरीर देदीप्यमान हो रहा है। सूर्यसे बढ़कर प्रकाश एवं चन्द्रमासे बढ़कर शीतलता है। इतनी सुन्दरता है जिसे देखकर

रति और कामदेव भी मोहित हो जाते हैं। अपने प्रेमसे सबको आकर्षित कर रहे हैं। उनका चिन्तन अमृतमय, आनन्दमय है।

कैसा अद्भुत आनन्द है। उस आनन्दकी सीमा ही नहीं है, वह शान्तिमय आनन्द है। वह चेतन आनन्द है, प्रकाश स्वरूप आनन्द है, अचिन्त्य आनन्द है, पूर्ण आनन्द है। इस प्रकार निराकार रूपसे तो भगवान् सब जगह रहते ही हैं। वे ही साकार रूपसे प्रकट होकर हमें मुग्ध कर रहे हैं। अब मानसिक पूजा करनी चाहिये। प्रभुकी मानसिक पूजा प्रेमभक्तिप्रकाशमें लिखी विधिसे विस्तारपूर्वक की, फिर नैवेद्य तथा ऋतुफलका भोग लगाया, आचमन कराया, फिर पान वगैरह देकर आचमन कराकर हाथ धुलाया। फिर आरती उतारता हूँ, फिर स्तुति करके परिक्रमा करता हूँ, भगवान् मेरे साथ-साथ घूम रहे हैं, फिर पुष्पांजलि अर्पित करता हूँ, स्तुति गाता हूँ। हे नाथ! आपसे यही याचना करता हूँ कि आप अपनी भक्ति प्रदान करें, आपका ध्यान बराबर होता रहे तथा आपके नामका जप निरन्तर होता रहे। मेरी सारी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि आपमें निवास करें।

कानोंसे आपके गुणानुवाद सुनता रहूँ, वाणीसे आपके नामका गान करूँ, हाथोंसे आपकी सेवा करता रहूँ। आपके चरणोंमें नमस्कार करूँ। इस प्रकार मेरी सारी इन्द्रियाँ आपमें ही रमण करती रहें, आपमें हमारा प्रेम हो, आपसे कभी वियोग न हो, यही मेरी प्रार्थना है। हे नाथ! आप जिस प्रकार नेत्रोंके सामने दीखते हैं, इसी प्रकार हृदयमें प्रवेश कर जाइये। भगवान् हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं।

जहाँ नेत्र जाते हैं वहीं भगवान् विराजमान हो रहे हैं। सर्वत्र भगवान् हैं ही, सब जगह भगवान् समभावसे व्यापक हो रहे हैं।

हमलोगोंको ऐसे ध्यानमें मस्त रहना चाहिये। भगवान् कहते हैं मेरे सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार सूतके मणियोंकी मालामें सूत-ही-सूत है, इसी प्रकार चारों ओर नीचे ऊपर बाहर-भीतर सर्वत्र भगवान् ही परिपूर्ण हो रहे हैं। भगवान् ही निराकार और भगवान् ही साकार रूप हैं।

शरीर संसारको भुलाकर केवल एक परमात्माका ही ध्यान करना चाहिये। आनन्द-ही-आनन्दके सिवाय कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकारके ध्यानमें हर समय मस्त रहना चाहिये। यहाँसे उठना पड़े तो भी ध्यानमें मस्त रहते हुए ही उठे, जो बात आपको बतायी इसीके अनुसार एकान्तमें ध्यान करें, भगवान्से प्रार्थना करें, जिससे भगवान् हमें साक्षात् दर्शन देकर हमारा कल्याण कर दें। ध्यान नहीं लगे तो भगवान्से प्रार्थना करें, जिस प्रकार अर्जुनने भगवान्से की थी।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २।७)

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

जो हर समय ध्यानमें मस्त होकर अपना जीवन बिताये, उनका ही जीवन संसारमें धन्य है।

नारायण नारायण नारायण

भगवान्‌की लगन लगावें

प्रश्न—यहाँसे घर जाकर हम क्या करें?

उत्तर—जिस प्रकार लोभी आदमी रुपयोंके लिये ही दौड़ लगाता है, यही भजन करता है कि रुपया किस तरह मिले। इसी प्रकार हमें भी यह भजन करना चाहिये कि भगवान् कैसे मिलें? दूकानदार प्रातःकालसे रात्रितक जो कुछ चेष्टा करता है, उसका यही लक्ष्य रहता है कि रुपये कैसे मिलें? कोई भी कार्य उसके द्वारा होता है उसमें यही लक्ष्य रहता है कि दो पैसे मिलें। नुकसानके रास्तेपर वह एक पैर भी नहीं रखता। जैसे रुपयोंका लोभी रात-दिन प्रयत्न करता है, इसी प्रकार हमें भगवान्‌के लिये प्रयत्न करना चाहिये। अपने तो जो कुछ है भगवान् हैं। न रुपयोंका आदर करे, न और किसीका आदर करे, एक ही धुन हो कि भगवान् कैसे मिलें। लगन होनी चाहिये, फिर देखो, भगवान्‌के मिलनेमें कितनी देर होती है।

लगन लगन सब कोई कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

सब कोई लगन-लगन पुकारते हैं, किन्तु असली लगन वह है जिसमें तन-मन खो दिया जाय। चाहे सर्वस्व नाश हो जाय परवाह नहीं, ऐसी लगन लगनी चाहिये। उस लगनमें भगवान् मिलते हैं। भगवान् देखते हैं कि इसकी लगन सराहने लायक है। ध्रुवकी जैसी लगन थी। मन भगवान्‌में लगा दिया। शरीरका ज्ञान नहीं, शरीर जाओ मिट्टीमें, इस प्रकार लगन लगानी चाहिये। यहाँ भी और घरपर जाकर भी यही लगन लगावे। और करना

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ल ३, बृहस्पतिवार, संवत् २००१, दिनांक २२-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

ही क्या है, नहीं तो भारी दुर्दशाका सामना करना पड़ेगा। इस वनमें थोड़ी दृष्टि डालो, स्थान-स्थानपर वृक्ष खड़े हैं। ये सभी कभी मनुष्य थे, अब अपंगकी तरह खड़े हैं। वर्षा होती है तो भीगते हैं, धूपमें जलते हैं, जाड़ेमें शीत पड़ती है तो सर्दीसे सिसकते हैं। हमलोग यदि सचेत नहीं होंगे तो हमलोगोंका भी नम्बर यहाँ आयेगा। यहाँ जो लाखों अडूसेके वृक्ष खड़े हैं, हमें भी उनमें खड़ा होना पड़ेगा या लंगूर बन्दर होकर घूमेंगे। यह बात समझनी चाहिये। असंख्य योनियाँ हैं, मनुष्य-शरीरके बाद यह दुर्दशा तैयार है। आपके पास कोई भी उपाय नहीं है कि हम पशु-पक्षी नहीं बनेंगे, वृक्ष नहीं बनेंगे। आपको बाध्य होकर अन्य योनियोंमें जाना पड़ेगा।

जो कुछ आपको करना है जबतक देहमें प्राण है, तबतक कर लेना चाहिये। यह बात जब आपके समझमें आ जायगी, तब आपको भगवान्‌के बिना मिले चैन नहीं पड़ेगा। भारी खतरा है, उसके लिये आपके पास कोई उपाय नहीं है। न कोई घूससे काम चलेगा, न सिफारिश चलेगी, न वकीलसे काम चलेगा। भगवान् सुनते ही नहीं हैं, चाहे आप रोते रहो। जैसा आपका कर्म होगा, वहाँ भेज देंगे।

पक्षीको भी हमलोगोंकी तरह पीड़ा होती है और वृक्षोंको भी होती है, यह संसार दुःख रूप ही है। इसलिये इस संसार सागरसे पार जानेके लिये भगवान्‌की शरण लेनी चाहिये, और कोई उपाय नहीं है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

हे अर्जुन! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कर्मोंके अनुसार भ्रमण

कराता हुआ सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित है।

यदि इस दुःखसे छूटनेकी इच्छा हो तो उस ईश्वरकी शरणमें जाना चाहिये।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परमधामको प्राप्त होगा।

मन उसमें लगा दे, बुद्धि उसमें लगा दे, इन्द्रियाँ उसमें लगा दे, फिर उसकी कृपासे अविनाशी शान्तिको प्राप्त होगा। ईश्वर कहाँ हैं? सब जगह हैं, विशेष कर तुम्हारे हृदयमें हैं। इससे निकट और क्या हो सकता है, इसलिये उस परमात्माकी शरण होना चाहिये। बुद्धिसे निश्चय करना है कि परमात्मा सब जगह हैं। यह बुद्धिसे भगवान्‌की शरण होना है। वाल्मीकि ऋषिसे भगवान्‌ने पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? ऋषिने कहा कि आप कहाँ नहीं हैं? जब ऐसी बात है तब लाख काम छोड़कर हमें भगवान्‌का भजन, ध्यान करना चाहिये। बुद्धिके निश्चयके अनुसार जो मनसे मनन करना है, यह मनसे शरण होना है। वाणीके द्वारा नाम और गुणोंका उच्चारण करना है, यह वाणीसे शरण होना है। या तो हमारा सारा समय भगवान्‌के नाम और गुणोंके कीर्तनमें बीतना चाहिये या एकान्तमें भजन, ध्यानमें बीतना चाहिये या कानोंसे भगवान्‌के गुणानुवाद सुनना चाहिये। जबतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हो, तबतक दूसरे काममें पड़े ही नहीं, असली काम बनाकर ही दूसरी चेष्टा करे। आपने पूछा था घरपर जाकर क्या करना चाहिये? उसके उत्तरमें ये बातें बतायीं।

मनुष्य-शरीरको पाकर जो विषयोंमें मन लगाता है, वह अपने गलेमें छूरी लगाता है, वह मूर्ख है। इसीलिये यह कहना है कि लोग समझते नहीं, इसीलिये रोते रहते हैं, जो चिन्ता शोक करता है वह मूर्ख ही है। यदि ज्ञान होता तो यह दशा नहीं होती। भगवान् कहते हैं—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २। ११)

हे अर्जुन! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।

पश्चात्ताप, संताप क्यों होता है? उन्होंने पूर्वमें भूल की है, अपना समय व्यर्थ खोया, इसलिये रोना पड़ता है। एक भाईका लड़का मर गया, धन चला गया, रोता है, मूर्खता है। यदि धन इकट्ठा नहीं करता तो क्यों रोना पड़ता। इसी प्रकार पुत्रमें प्रेम नहीं होता तो क्यों रोना पड़ता, सारी दुनियाके लड़के मरते हैं। जो जन्मा है, वह मरेगा, कहा हमने बीस वर्ष इसके पालन पोषणमें बिता दिये। यह तुम्हारी मूर्खता है। बीस वर्ष भगवान्‌के लिये लगाते तो रोना नहीं पड़ता। ये संसारके पदार्थ हैं। इनका तुम संग्रह करते हो, इनसे वियोग अवश्य होना है। किसी भी चीजका संयोग है, उसका वियोग निश्चित है। संयोगके समय प्रेम करोगे तो वियोगमें रोना ही पड़ेगा। यदि अपना कल्याण चाहो तो संसारके पदार्थोंमें प्रेम करो ही मत। हमलोग जितने हैं सबका वियोग अवश्य होगा। स्त्री, पुत्र, घर और रुपयोंके साथ आपका सम्बन्ध है, यहाँतक कि शरीरके साथ आपका सम्बन्ध है, उसका वियोग

होना निश्चित है। इसीलिये इनके पालनमें अपना समय लगाना ही मूर्खता है। कोई रोता है तो अपनी मूर्खताके कारण रोता है। वही मनुष्य बुद्धिमान् है, ज्ञानी है, जो मनुष्य-शरीर पाकर परमात्माकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है। भगवान् कहते हैं—

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

(गीता ६। २३)

जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है; उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

उस योगको प्राप्त करना चाहिये जो दुःखोंको नाश करनेवाला है। वैराग्ययुक्त चित्तसे अनुष्ठान करना चाहिये। मनुष्य-शरीर पाकर जो ऐश, आराम और भोगोंमें समय लगाता है, वह निरा मूर्ख है, उसकी दुर्गति होनेवाली है। ये जो वृक्ष हैं, इन सबने यही काम तो किया। जब ये मनुष्य थे, तब भगवान्‌में मन नहीं लगाकर भोगोंमें मन लगाया। जो भोगोंमें मन लगाता है वह मूर्ख ही है। तुलसीदासजी कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

मनुष्य-शरीरको पाकर जो भोगोंमें मन लगाता है वह अमृतके बदले विषको खाता है, अमृत क्या है? परमात्मा।

परमात्मामें मन नहीं लगाकर भोगोंमें मन लगाता है, उसकी तो दुर्गति ही होनेवाली है। पतिंगे, भौंरा, हाथी, मृग, मछली—ये सभी जीव एक-एक इन्द्रियके वशीभूत होकर अपना जीवन खो देते हैं। हमलोग पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत हो रहे हैं, इसलिये भोगोंको विषके समान समझकर त्याग देना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं—

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

गुंजाका एक छदाम (उस समय प्रचलित पैसेकी सबसे छोटी इकाई) भी मूल्य नहीं है। भगवान्‌का भजन, ध्यान पारसके समान एवं संसारके भोग चिरमीके समान हैं, इसलिये हमें भोगोंकी ओर मन न लगाकर भगवान्‌की ओर मन लगाना चाहिये। भोग भोगना आत्माकी उन्नतिमें घातक है, ये वृक्ष हैं इनकी आयु भोगोंमें बीत गयी, इसलिये चौरासी लाख योनियोंमें घूमते हैं। आप भी सचेत नहीं होंगे तो यही दशा आपकी होगी। आप सावधान हो जायँगे तो सदाके लिये दुःखोंसे मुक्त हो जायँगे। हर समय आपको बड़ी भारी शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति होगी।

आपको हजारों-लाखों रुपये मिलते हैं, उसके लिये आपको पाप करना पड़ता है, छिपाव-कपट करना पड़ता है। झूठ, कपट और चोरीसे आपके जो धन पैदा होता है, उससे न तो इस जन्ममें कल्याण होना है न उस जन्ममें। केवल आपकी मूर्खता है, जो आप अपने जीवनको खतरेमें डाल रहे हैं। आपके मरनेके बाद रुपयोंसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा, फिर आपको दूसरेके धनकी ओर क्यों दृष्टि डालनी चाहिये। भारी-से-भारी आपत्ति भी आकर पड़े तो भी कभी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। परमात्मा आपको कठिनाई भेजकर परीक्षा ले रहे हैं। यदि उत्तीर्ण हो गये तो मुक्त हो जायँगे। नहीं तो भगवान् चौरासी लाख योनियोंमें डाल देंगे।

शास्त्रोंमें जो बातें लिखी हैं, गीतामें जो बातें लिखी हैं, उनपर आपको विश्वास करना चाहिये। जिन्होंने सत्य धर्मका पालन किया है वे संसारसे तर गये, जिन्होंने धर्मका त्याग कर दिया उनका पतन हो गया। महाभारतके सभापर्वकी बात है, विदुरजीने यह बात कही थी कि जिस सभामें न्याय नहीं होता, वह सभा नष्ट हो जाती है। द्रौपदी जो पुकार रही है। इसकी बात सुनकर आपलोग न्याय करें। उस सभामें उन्होंने एक कथा कही—

एक बार प्रह्लाद पुत्र विरोचन एवं अंगिरा पुत्र सुधन्वामें श्रेष्ठताको लेकर विवाद हो गया एवं उन्होंने अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी। विरोचनने कहा—अच्छा, प्राणोंकी बाजी लगानेके पश्चात् हम दोनों कहाँ चलेंगे? मैं न तो देवताओंके पास जा सकता हूँ और न कभी मनुष्योंसे ही निर्णय करा सकता हूँ। सुधन्वा बोला—प्राणोंकी बाजी लग जानेपर हम दोनों तुम्हारे पिताके पास चलेंगे। प्रह्लाद अपने बेटेके लिये भी झूठ नहीं बोल सकते। सारी बातें सुनकर प्रह्लादने कहा—विरोचन! सुधन्वाके पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ है, इसकी माता भी तुम्हारी मातासे श्रेष्ठ है, अतः तुम आज सुधन्वासे हार गये। सुधन्वाने कहा—प्रह्लाद! तुमने धर्मको ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश झूठ नहीं कहा है, इसलिये अब इस दुर्लभ पुत्रको फिर तुम्हें दे रहा हूँ।

जो मनुष्य धर्मकी शरण लेते हैं। धर्मका त्याग नहीं करते, उनका विनाश करनेकी शक्ति किसमें है? हम घबड़ाकर धर्मका त्याग कर देते हैं तो धर्म भी हमें छोड़ देता है। ईश्वर, महात्मा और धर्म अपनी ओरसे किसीको नहीं छोड़ते, लोग ही उन्हें छोड़ देते हैं, इसलिये भारी आपत्ति पड़नेपर भी हमें धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।

इस कथासे हमें यही शिक्षा लेनी चाहिये कि भारी-से-भारी संकट पड़नेपर भी धर्मका त्याग न करे, क्योंकि धर्म नित्य है, अर्थ अनित्य है। अर्थ चला जायगा तो फिर आ जायगा, किन्तु धर्म चला जायगा तो फिर नहीं आयेगा। इसलिये चाहे प्राण चले जायँ, धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।

धर्मके पालनसे धर्मात्मा पुरुषका बड़ा प्रभाव पड़ता है। उसका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वाणीसे उसकी महिमा गायी नहीं जा सकती। शत्रुके ऊपर भी उसका प्रभाव पड़ता है, इसलिये हमें धर्मात्मा बनना चाहिये। राजा युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा थे, धर्मकी

मूर्ति थे, इसलिये उन्हें लोग धर्मराज कहते थे। जिस प्रकार रामराज्यमें धर्मका पालन था, महाराज रामचन्द्रजीने धर्मपालनके लिये अपनी प्यारी सीताका त्याग कर दिया। राजा युधिष्ठिर ऐसे धर्मात्मा थे कि उनके साथ वार्तालाप करनेसे एक यक्षका भी कल्याण हो गया।

पद्मपुराणमें कथा है—एक बड़े धर्मात्मा ब्राह्मण थे। जंगलमें पाँच प्रेत मिले। प्रेतोंको पूछनेपर उन्होंने बताया कि किस हेतुसे वे प्रेत बने। सार बात यही है कि भारी पाप करनेसे प्रेत होता है। गुरुहत्या, मनुष्यहत्या, ब्रह्महत्या आदि करनेवाले प्रेत होते हैं। जो सदाचारी पुरुष होते हैं वे प्रेत नहीं होते, फिर जिनमें महापुरुषोंके लक्षण घटें, वह तो प्रेत होगा ही क्यों? प्रेतोंने इस प्रकारकी बात बतायी तो उसी समय विमान आये और वे प्रेतयोनिसे छूटकर परमपदको प्राप्त हो गये। उस महात्माके साथ वार्तालापका यह महत्त्व दिखलाया गया। यही बात महाभारतमें आयी है—राजा नहुष जो महान् पापी था, राजा युधिष्ठिरके साथ वार्तालाप करनेसे पवित्र हो गया।

राजा युधिष्ठिर जिस देशमें वास करते, वह देश पवित्र हो जाता, उस देशमें महामारी नहीं आ सकती, उसमें अकाल नहीं पड़ता, वहाँ धन-धान्यकी वृद्धि होती, प्रजा सत्यवादी होती।

ध्यान देकर सुनें, राजा युधिष्ठिरका कैसा अद्भुत प्रभाव था। उनके गुण-चरित्र उपलब्ध हैं, हमलोग भी उनके उपदेश धारण करें तो हमलोगोंका भी कल्याण हो सकता है।

आज तुलसीदासजी नहीं हैं, किन्तु उनका उपदेश, उनकी जीवनी उपलब्ध है, उससे हजारों मनुष्य मुक्त हो रहे हैं। वे चले गये और संसारमें एक वस्तु 'श्रीरामचरितमानस' छोड़ गये, जिससे सारी दुनियाका कल्याण हो रहा है। हमलोग भी अपना जीवन तुलसीदासजीकी तरह बनावें। हमारा जीवन, हमारी शिक्षा तुलसीदासजीके अनुसार होगी तो लोगोंका कल्याण

होता रहेगा, अन्यथा हमारा जीवन पशुओंके समान है।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

जिन पुरुषोंमें न कोई विद्या है, न दान है, न ज्ञान है, न तप है, न धर्म है, वे इस मृत्युलोकमें भार रूप हैं, मनुष्यकी आकृतिमें पशु ही हैं। यह सब सुनकर आपलोगोंमें जोश आना चाहिये।

एक समय दुर्योधन आदि राजा युधिष्ठिरको वनमें मारनेके लिये गये। भीष्म आदिने मना किया कि जिस वनमें युधिष्ठिर हैं वहाँ मत जाना, फिर भी वहीं गये। चित्रसेन गन्धर्व सेना लेकर दुर्योधनसे युद्ध करने आया, घोर युद्ध हुआ। चित्रसेनने दुर्योधनको बाँध लिया। उसके मंत्रीने राजा युधिष्ठिरको सूचना दी। युधिष्ठिरने भीम, अर्जुनको भेजकर दुर्योधनको छुड़वाया। दुर्योधन लज्जित हो गया। युधिष्ठिरने देखा कि इसे संकोच हो रहा है, कहा—तुम्हारे भाई तुम्हारी राह देखते होंगे। दुर्योधन चुपचाप चला गया। दुर्योधन-जैसे पापीपर भी एक बार तो प्रभाव पड़ा।

महाराज युधिष्ठिरके बर्तावकी ओर देखो। अपने साथ बुराई करनेवालेके साथ भी भलाईका व्यवहार करते हैं। हमें यह बात सीखनेकी है।

जब पाण्डव लोग वनमें गये, तब कुन्ती रोती रही, गान्धारी तथा धृतराष्ट्रने कैसा व्यवहार किया। उसकी खबर भी नहीं ली कि जीती है या मर गयी। वही कुन्ती जब धृतराष्ट्र, गान्धारी वनको जाने लगे, तब सेवा करनेके लिये साथ गयी। राजा युधिष्ठिर तथा माता कुन्तीका जीवन आदर्श है। हमलोगोंको भी इनकी तरह आदर्श जीवन बनाना चाहिये।

नारायण नारायण नारायण

महात्मा बनें

संसारमें जितने प्राणी हैं, उनमें सबसे श्रेष्ठ मनुष्य है। मनुष्य-शरीरमें ही आत्माका उद्धार हो सकता है, इसलिये देवता भी मनुष्य बननेकी चेष्टा करते रहते हैं। मनुष्योंमें जो नीच, पामर हैं उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो न पापी हैं, न धर्मात्मा हैं, न आस्तिक हैं, न नास्तिक हैं, उनसे वे श्रेष्ठ हैं जो सकाम भावसे कर्म करनेवाले हैं। यज्ञ, दान, तप आदि कामना लेकर करते हैं, शास्त्रोंमें श्रद्धा है। उनसे वे श्रेष्ठ हैं जिनके कामना तो नहीं है, किन्तु आपत्ति पड़नेपर भगवान्‌से प्रार्थना कर लेते हैं। गजेन्द्र, द्रौपदी यह आर्त भक्त हैं। इनसे वे श्रेष्ठ हैं जो जिज्ञासु अपने आत्माके कल्याणके लिये प्रयत्न करते हैं। इनसे श्रेष्ठ हैं निष्कामी भक्त जैसे— अम्बरीष, प्रह्लाद आदि।

जो योगी हैं, जिन्हें अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हैं, वे श्रेष्ठ नहीं हैं, वे तो भगवान्‌के भक्तोंसे भी नीचे हैं। वे तो सकामियोंकी श्रेणीमें शामिल हैं। भक्त तो सकाम कर्म करनेवालोंसे, तपस्या करनेवालोंसे, शास्त्रके ज्ञानवालोंसे सबसे श्रेष्ठ हैं। गीतामें बताया है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

(गीता ६। ४६)

योगी तपस्वियोंसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकामकर्म करनेवालोंसे भी योगी श्रेष्ठ है; इसलिये हे अर्जुन! तू योगी हो।

किन्तु भक्त तो योगियोंसे भी श्रेष्ठ है।

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ल ४, शुक्रवार, संवत् २००१, दिनांक २३-५-१९४४, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६। ४७)

सम्पूर्ण योगियोंमें भी जो श्रद्धावान् योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

भक्तोंमें भी जो अर्थार्थी भक्त हैं, उनसे आर्त भक्त श्रेष्ठ हैं, उनसे जिज्ञासु श्रेष्ठ हैं, जिज्ञासुओंसे भी जो निष्कामी हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी श्रेष्ठ हैं भगवत्प्राप्त पुरुष, जिन्हें परमात्माकी प्राप्ति हो गयी है। सिद्धोंमें भी जो कारक पुरुष हैं, वे समय-समयपर भक्तिका प्रचार करनेके लिये भगवान्‌के भेजे हुए आते हैं। भगवान् जिन्हें अधिकार देकर भेजते हैं। ऐसे पुरुष जन्मसे ही मुक्त हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं। इनसे श्रेष्ठ परमात्मा हैं, परमात्मासे श्रेष्ठ कोई नहीं है।

हमें भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। यदि भगवान् यहीं मिल जायँ, तब तो उत्तम बात है, यदि यहाँपर भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई, भगवान्‌का भजन-ध्यान करते हुए मरे तो अन्त समयमें भगवान्‌के धामकी प्राप्ति हो जायगी।

जिस कामके लिये यह शरीर मिला है, वह काम इससे नहीं किया तो यह जीवन व्यर्थ है। इस शरीरको पाकर जो ऐश-आराममें मन लगाते हैं, वे पापी तो अपने जन्मको धूलमें मिलाकर ही जाते हैं। ऐसे अमूल्य जीवनको पाकर अपने जीवनको पाप, प्रमाद, आलस्यमें बिताना कलंक लगाना है, आपका समय भोग, प्रमाद, पाप, आलस्यमें नहीं बीतना चाहिये। बहुत-से भाई तो जिह्वा इन्द्रियके, बहुत-से नेत्र इन्द्रियके वशीभूत

हो जाते हैं। स्वाद, शौकीनी—ये सब भोगके ही भेद हैं। इनमें समय बिताना महामूर्खता है। प्रमादमें समय बिताना इससे भी खराब है। प्रमाद अर्थात् कर्तव्य कर्म तो करे नहीं और व्यर्थ चेष्टा करे। यह प्रमाद बहुत खराब है। प्रमादसे अधिक खराब आलस्य है, इससे भी खराब पाप अर्थात् शास्त्रके विपरीत आचरण है। पापीमें नास्तिकता रहती है। इसलिये चाहे प्राण चले जायँ, किन्तु पाप कभी न करें, संसारमें पापीके समान कोई नीच नहीं है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

दूसरेका हित करनेके समान संसारमें कोई धर्म नहीं है। दूसरेको दुःख पहुँचानेके समान पाप नहीं है। सबसे नीचा दर्जा पापीका है।

जो अपने साथ बुराई करे उसके साथ हम बुराई करें यह तो पशुता है। इससे ज्यादा पापी वह है जो निरपराधी, शक्तिहीन मनुष्य या पशुको दुःख देता है, वह बड़ा भारी पापी है। उससे भी अधिक वह पापी है जो अपना हित करनेवालेका अहित करता है। शास्त्र कहता है उसे पिशाच कहें या राक्षस कहें उसके लिये कोई शब्द ही नहीं है।

इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि हमें पापी नहीं बनना चाहिये। नीच-से-नीचकी व्याख्या आपको इसलिये बतलायी कि अपनेको इस तरह नहीं बनना है। नीच पुरुषोंका तिरस्कार नहीं करे। उनमें जो नीचता है उसका तिरस्कार करे। नीच पुरुषोंकी उपेक्षा करे, किन्तु अपमान न करे।

उनसे अपना सम्बन्ध नहीं रखे, उनके संगसे हानि-ही-हानि है। महात्माके संगके समान कोई लाभ नहीं है। दूसरेके हितके

समान कोई धर्म नहीं है, दूसरेके अहित करनेके समान कोई पाप नहीं है। ईश्वरकी भक्ति तो सबसे बढ़कर धर्म है। यज्ञ, दान, तप आदि कोई भी भगवान्‌की भक्तिके समान नहीं है। भगवान्‌ने बतलाया है—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

(गीता ११। ५३)

हे अर्जुन! जिस प्रकारके दर्शन मैंने तुम्हें दिये हैं इस प्रकारके दर्शन न वेद पढ़नेसे, न यज्ञसे, न दानसे, न तपसे हो सकते हैं, ऐसे दर्शन केवल मेरी अनन्यभक्तिसे हो सकते हैं, इसलिये हमें अनन्यभक्ति करनी चाहिये। अनन्यका मतलब है भगवान्‌के सिवाय अन्य नहीं।

जैसे पतिव्रता स्त्री स्वामीकी आज्ञा मानकर सबकी सेवा करती है, इसी प्रकार हमें हमारे पति परमात्माकी आज्ञा मानकर सबकी सेवा-पूजा करनी चाहिये।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता १७। १४)

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीर-सम्बन्धी तप कहा गया है।

भगवान्‌की प्राप्तिके लिये कोई-कोई पुरुष ही यत्न करता है, बाकी लोग तो हाय धन, हाय रुपया कर रहे हैं। विद्यार्थी जिस प्रकार अपना पाठ रात-दिन घोटता है, इसी प्रकार ये भी पाठ करते हैं कि रुपया कैसे मिले? रुपया कैसे मिले? भगवान् कैसे

मिलें? भगवान् कैसे मिलें? इस प्रकारका पाठ तो कोई बिरला ही करता है। वह हमें करना चाहिये। जितने भाई यहाँ आये हैं, अधिकांश इसलिये आये हैं कि हमारा कल्याण हो। भगवान् कहते हैं कि इस प्रकारके प्रयत्न करनेवालोंमें भी कोई एक पुरुष ही मुझे जानता है। इस प्रकार करोड़ोंमें कोई एक पुरुष तत्त्वसे जानता है।

हजारों मनुष्योंमें कोई एक प्रयत्न करता है, उसमें तो हम भी आ गये। इतना काम और सिद्ध कर लें कि भगवान् कहते हैं कि प्रयत्न करनेवालोंमें कोई एक जानता है। यह बात आपने कर ली तो आपके सारे दुःखोंका सदाके लिये विनाश हो गया, सदाके लिये आप निर्भय, सुखी हो गये।

ऐसी बात है तो इसके लिये आपको कटिबद्ध होकर साधन करना चाहिये। आप यदि मुक्त हो गये तो स्वयं तो आप मुक्त हो गये, आपके द्वारा दूसरोंका भी कल्याण हो सकता है। कलियुगमें तुलसीदासजी आदि तो मुक्त हुए ही, वे सदावर्त लगा गये, जिससे औरोंका भी कल्याण हो रहा है। लोग तो जो सदावर्त लगा जाते हैं, वह उठ जाता है, उनके लड़के, पोते उठा देते हैं, किन्तु तुलसीदासजीका सदावर्त जल्दी उठनेका नहीं है। जबतक उनके ग्रन्थ संसारमें रहेंगे, तबतक यह सदावर्त लगा ही रहेगा।

महाराज रामचन्द्रजीने वाल्मीकि रामायणमें स्वयं कहा है कि जबतक सूर्य, चन्द्रमा संसारमें रहेंगे, मेरी रामायण संसारमें कायम रहेगी।

शुकदेवजी, अम्बरीष आदि ऐसे महात्मा पुरुष हुए हैं, जिनके दर्शन, भाषणसे लोगोंका कल्याण हो गया। ऐसे पुरुषोंको धन्य है। वे चले गये, किन्तु संसारमें उनकी जीवनी, गुण, उपदेश

उपलब्ध हैं, वे मरकर भी जीवित हैं, उन्हींका जीवन सफल है, उनके माता-पिताको धन्यवाद है। वह भूमि पवित्र है, जहाँ उनके चरण टिके। उच्चकोटिके साधकोंको भी भगवान्‌ने महात्मा कहा है—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

(गीता ९। १३-१४)

परन्तु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृतिके आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मनसे युक्त होकर निरन्तर भजते हैं।

वे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यानमें युक्त होकर अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

(गीता १६। १—३)

भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान,

इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो हे अर्जुन! दैवी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

ये लक्षण जिनमें हों उन्हें भी महात्मा कहते हैं।

भगवान् कहते हैं वे निरन्तर मेरे नाम गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं, दृढ़ निश्चय भी है, नित्य मेरेको नमस्कार करते हैं, मेरे ध्यानमें नित्य लगे हुए हैं। ऐसे महात्मा शीघ्र ही परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि महात्माका पद भगवान्ने पहले ही दे दिया। जिस प्रकार विभीषणको पहले ही लंकेश बना दिया, आखिर वे लंकेश हो ही गये। भगवान् महात्माका पद दे देते हैं तो फिर महात्मा बन ही जाता है। लंकेशका पद उसे दे दिया, इसी प्रकार दैवी-सम्पदावालोंको महात्माकी पदवी दे दी। जिसे परमात्माकी प्राप्ति हो गयी वे तो पूर्ण महात्मा हैं और जिनमें महात्माओंके लक्षण

घटते हैं, वे महात्मा होनेवाले हैं।

जो जीते-जी भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं उन्हें जीवन्मुक्त महात्मा कहते हैं। हमें प्रयत्न तो जीवन्मुक्त बननेका ही करना चाहिये। परमात्माकी दयासे कठिन भी नहीं है। आप मरनेके पहले परमात्माको प्राप्त कर लें तो आपके द्वारा बहुतोंका कल्याण हो सकता है।

भगवान्‌के परमधाममें जाकर कोई पुरुष फिर संसारके कल्याणके लिये आते हैं, उनके क्या लक्षण होते हैं? जितने परमात्माके परमधाममें गये हैं, वे सभी महात्मा हैं, किन्तु जिनके हृदयमें जीवोंके कल्याणका बड़ा उत्साह होता है, ऐसे पुरुषोंको ही भगवान् कारक पुरुष बनाकर भेजते हैं। वे महात्माओंमें भी उच्चकोटिके हैं।

अपनेपर भी घटा ले। यहाँ सेवाका काम पड़े तो सेवाका अधिकारी कौन समझा जाता है? जिसका उत्साह है, आग्रह है, प्रसन्नता है, उसे ही वह काम सौंपा जाता है। जो मनको मारकर काम करता है, उसे भेजनेका मन नहीं करता। यही बात भगवान्‌के दरबारमें है। भगवान् जिसके चित्तमें उत्साह, प्रसन्नता, आग्रह देखते हैं, उन्हें ही कारक बनाकर भेजते हैं। भगवान् ऐसे पुरुषोंके स्वभावको अधिक पसन्द करते हैं। भगवान् कहते हैं ऐसे पुरुषोंकी धूलि मैं अपने सिरपर रखना चाहता हूँ। मैं उनका बदला नहीं चुका सकता। हनुमान्‌जीसे भगवान्‌ने यह बात कही। सीताजीका समाचार हनुमान्‌जी लाये, लक्ष्मणके प्राण बचाये, भरतको सूचना हनुमान्‌जीने ही दी, राम, लक्ष्मण, भरत सब हनुमान्‌जीके ऋणी हो गये।

भगवान्‌ने कहा—हनुमान्! तुमने हमारी जो सेवा की, बदलेमें मैं तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर सकता। तुम्हारा यह ऋण मेरेपर

रहेगा। मैं यह ऋण चुकाना भी नहीं चाहता, क्योंकि तुम्हारेपर आपत्ति पड़े तब मैं तुम्हारी सेवा करूँ, इसलिये मैं चाहता ही नहीं कि तुम्हारे पर विपत्ति पड़े।

भगवान्‌ने यही आशीर्वाद दिया कि मैं तुम्हारा सदा ऋणी रहूँ, मैं तुम्हें दुःखी नहीं देखना चाहता। हमें भी हनुमान्‌की तरह महात्मा बनना चाहिये। तुलसीदासजीकी तरह महात्मा बनना चाहिये। बहुत-से भाई लोग आज हनुमान्‌जीकी भक्ति करते हैं कहते हैं हनुमान्‌जी देवता थे। हनुमान्‌जी देवता नहीं थे, वे भक्त थे। हनुमान्‌जी तो उन भक्तोंमें हैं, जो भगवान्‌के समान हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

हे नाथ हेतुरहित उपकार करनेवाले आप दो ही हैं, एक आप और एक आपके भक्त। देवताओंकी श्रेणी तो नीची कर दी—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

सुर, नर और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थके कारण प्रीति करते हैं। परमात्मा ही सबसे बढ़कर महापुरुष हैं, उनकी कृपासे हम महापुरुष बन सकते हैं, इसलिये उनकी शरण लेनी चाहिये। महापुरुषका लक्षण यह है कि उनमें समता होती है।

वेदव्यासजीके पुत्र शुकदेव परीक्षित्‌की सभामें जा रहे हैं। रास्तेमें लड़के कूड़ा-कंकड़ डालते हैं, अपमान करते हैं, सभामें पहुँचे सब खड़े हो गये, पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे, स्तुति गाने लगे। वहाँ निन्दा हुई, यहाँ स्तुति हुई, वहाँ तिरस्कार हुआ, यहाँ सत्कार हुआ, किन्तु शुकदेवजीके हृदयमें निन्दा-स्तुति, मान-अपमान समान है। यह महापुरुषोंके लक्षण हैं। हमें ऐसा ही महापुरुष बनना चाहिये।

महापुरुषोंकी महिमा जो शास्त्रोंमें आती है वह अपार है। वे

जिस मार्गसे चलते हैं, उनके परमाणु संसारमें विस्तारको प्राप्त होते हैं। जैसे कोई कस्तूरी लेकर चलता है तो उसकी गंध फूटती है, इसी प्रकार महात्माके परमाणु विस्तारको प्राप्त होते हैं। जैसे प्लेगके परमाणु घातक होते हैं। महात्मा पुरुषोंके परमाणु इसके विपरीत संसारसे उद्धार करनेवाले होते हैं। बड़े सूक्ष्म परमाणु होते हैं, दीखते नहीं। उनकी दृष्टि जहाँतक जाती है, वे परमाणु नेत्रोंके द्वारा फैल जाते हैं। वे जिस मार्गसे जाते हैं, उस मार्गको पवित्र करते जाते हैं। उनका बड़ा प्रभाव होता है। जिनमें श्रद्धा होती है उनपर अधिक प्रभाव पड़ता है। जिनके श्रद्धा नहीं होती उनके कम प्रभाव पड़ता है या नहीं भी होता तो आगे जाकर होता है।

महात्मा पुरुषोंका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। वे हमारा दर्शन करें तो कल्याण, हम उनका दर्शन करें तो कल्याण।

महात्मा पुरुष हमारे घर आयें तो हमारे लाभ, हम उनके घर जायँ तो हमारे लाभ। अग्नि उड़कर घासपर पड़े, चाहे घास उड़कर अग्निमें गिरे, अग्नि ही बन जाती है। महात्मामें ज्ञानाग्नि वास करती है। उनकी वाणीके द्वारा जो ज्ञानाग्निकी चिनगारियाँ निकलती हैं, कानोंमें पड़ते ही पापोंका नाश हो जाता है।

महात्माकी दृष्टि जहाँतक पड़ती है, वह स्थान पवित्र हो जाता है। उनके चरण जहाँ पड़ते हैं, वह पृथ्वी पवित्र हो जाती है। उनके हम दर्शन करें तो हमारे नेत्र पवित्र हो जाते हैं। महात्मा हमें देख लेते हैं तो उनके नेत्रोंके परमाणुका प्रभाव हमारे शरीरपर हो जाता है। जिनके दर्शन, भाषण एवं स्पर्शसे हमारेमें भगवान्‌की भक्ति हो, समझना चाहिये कि ये महात्मा पुरुष हैं। जिनके दर्शनसे परमात्मा याद आयें, हमारे लिये तो वे ही महात्मा हैं। हमें ऐसा बनना चाहिये कि हमारे संगसे दूसरोंको भगवान्‌की स्मृति हो जाय।

हम ईश्वरको हृदयमें याद करें तो सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर यदि साक्षात् भगवान् हृदयमें आ जायँ फिर पाप रह सकते हैं क्या?

जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।
मानौ चिनगी अग्निकी पड़ी पुराने घास॥

कैसा ही पापी हो हृदयमें नामको धारण किया तो पापोंका नाश हो जाता है। जब नामको याद करनेसे पापोंका नाश होता है, तब फिर उनको हृदयमें साक्षात् धारण कर लें तो बात ही क्या है? इसी प्रकार भगवान् अपने हृदयमें हमें बसा लें तो हमारे सारे पाप नाश हो जायँ। भगवान् किसे हृदयमें बसाते हैं? जो प्रेमसे उन्हें भजते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

अंगद जब अयोध्यासे विदा होने लगे, हनुमान्‌जीसे यही बात कही कि समय-समयपर आप भगवान्‌को मेरी याद दिला देना।

आज कोई महात्मा किसी जीवित या मरे हुए आदमीको याद करता है, उसकी प्रशंसा करता है, समझना चाहिये कि उस आदमीका बड़ा भारी भाग्य है। भगवान्‌के दरबारमें उसकी सिफारिश हो जाती है। भगवान् उसकी बातको टालते नहीं। विश्वामित्रने बहुत बार तपस्या करके ब्रह्माजीसे वर माँगा कि मैं ब्रह्मर्षि बन जाऊँ। ब्रह्माजीने कहा—यह मेरेसे नहीं हो सकता,

किन्तु वसिष्ठजी यदि तुम्हें ब्रह्मर्षि कह दें तो तुम ब्रह्मर्षि हो जाओगे। एक दिनकी बात है विश्वामित्र ऋषि वसिष्ठजीको मारने आये, इधर वसिष्ठ ऋषि उनकी तपस्याकी प्रशंसा कर रहे थे। विश्वामित्रके मनका भाव फिर गया कि मैं तो कुटिल हूँ, तलवारको फेंककर वसिष्ठजीके चरणोंमें गिर गये। वसिष्ठजीने कह दिया आओ ब्रह्मर्षि। वसिष्ठजीको यह अधिकार था कि वे चाहे जिसे ब्रह्मर्षि बना सकते थे।

इसी प्रकार जो महापुरुष होते हैं उनमें भगवान्‌की ओरसे विशेष अधिकार होता है। ऐसे पुरुष हृदयसे किसीको अच्छा मानते हैं, वह चाहे मर गया, चाहे जीवित है, उसके लिये बहुत लाभकी बात है, उनके ऊपर तो भगवान् ही हैं। भगवान् जिन्हें अच्छा मान लें वह तो अच्छा हो ही गया, उसके कल्याणमें क्या सन्देह है। जो भगवान्‌के हृदयमें वास करते हैं उनके भाग्यका क्या ठिकाना है। एक कथा है—

रुक्मिणीजीने भगवान्‌से पूछा—आपमें सबसे बढ़कर प्रेम किसका है। भगवान्‌ने कहा राधिकाजीका। रुक्मिणीजीने कहा—मैं उनसे मिलना चाहती हूँ। किसी समय राधिकाजी उनके घरपर आ गयीं, रुक्मिणीजीने खूब सत्कार किया। उन्हें गरम दूध पिलाया। राधिकाजी प्रसन्न होकर चली गयीं। रातको भगवान् सोने आये। रुक्मिणीजीने पगचंपी की तो देखा भगवान्‌के पैरोंमें फफोले हैं। रुक्मिणीजीने पूछा—महाराज! यह कैसे हो गये। कई बार आग्रह किया तो बताया कि आज राधिकाजी तुम्हारे यहाँ आयी थीं, उनकी तुमने सेवा की, दूध गर्म पिला दिया। रुक्मिणीजीने कहा—हाँ, खयाल नहीं रहा, गर्म पिला दिया। भगवान्‌ने कहा—राधिकाजीके हृदयमें मेरे चरण हर समय रहते

हैं। तुमने गर्म दूध पिला दिया, वह दूध मेरे चरणोंपर जाकर पड़ा, जिससे फफोले हो गये। भगवान्‌ने कहा—राधिकाजीके चरण मेरे हृदयमें वास करते हैं, मेरे चरण राधिकाजीके हृदयमें। जिन्हें महापुरुष याद करते हैं उनकी बड़ी महिमा है। इसी बातको याद करके अंगद हनुमान्‌जीसे कह रहे हैं कि आप मेरी याद दिलाना।

उन पुरुषोंकी महिमा कौन गा सकता है, जिनका भगवान्‌के हृदयमें वास है। महात्मा किसीको याद कर लें या कोई महात्माको याद करे यह बड़े ऊँचे दर्जेकी बात है।

इसलिये हमें महात्मा बनना चाहिये। जब हम महात्मा बन जायँगे, हमारे दर्शन, स्पर्श एवं शिक्षासे लोगोंका कल्याण होगा, हम मर जायँगे तो हमारे चरित्रोंसे, हमारे उपदेशसे लोगोंका कल्याण होता रहेगा। महात्मा जीते-जी तो संसारका उपकार करते ही हैं, मरनेके बाद भी उनके द्वारा लोगोंका कल्याण होता रहता है। सबके साथमें ही अपना कल्याण हो, भगवान्‌से यही माँगना चाहिये।

एक कहानी है। एक भगवान्‌का भक्त था। भगवान्‌की भक्ति की। भगवान् प्रसन्न हो गये, दर्शन दिये। कहा—क्या माँगते हो? भक्तने कहा—मैं तो कृतकृत्य हो गया, अब क्या माँगूँ। भगवान्‌ने कहा—मेरे सन्तोषके लिये माँगना ही होगा। भक्तने कहा—मुझे खूब सन्तोष है, कुछ माँगना नहीं है। भगवान्‌ने कहा—मेरे सन्तोषके लिये जो इच्छा हो, वह माँगो।

भक्त—इच्छा तो नहीं है; किन्तु आप आग्रह करते हैं तो सबका कल्याण कर दें।

भगवान्—फिर सबका पाप कौन भोगेगा।

भक्त—आप भुगताइये, मैं भोगूँ।

भगवान्—तुम भक्त हो, भक्तको सबका पाप किस तरह भुगता सकता हूँ।

भक्त—तो क्षमा कर दें।

भगवान्—यह तो असम्भव है।

भक्त—आप ईश्वर हैं, असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं।

भगवान्—यह बात तो मैं नहीं कर सकता।

भक्त—तो फिर आपको यह कहना नहीं चाहिये था कि जो इच्छा हो माँगो। यह बात तो जो सर्वशक्तिमान् हो वही कह सकता है। आपको तो कहना चाहिये था कि स्त्री ले लो, धन ले लो, पुत्र ले लो।

भगवान्—तुम जीते, मैं हारा।

भक्त—हमारी विजय तो सबके कल्याणमें होती, ऐसी विजय मैं नहीं चाहता, आप ही रखें।

भगवान्—सबका कल्याण होना तो सम्भव नहीं है, किन्तु जिस प्रकार मेरे दर्शन, भाषण, स्पर्श तथा नाम उच्चारणसे लोगोंका कल्याण हो सकता है, इसी प्रकार तुम्हारे दर्शन, भाषण, स्पर्श एवं नाम उच्चारणसे लोगोंका कल्याण हो जायगा।

संसारके कल्याणके लिये जो अपने आपकी बलि चढ़ानेको तैयार रहें, वे ही धन्य हैं। ऐसे ही महापुरुषोंको भगवान् कारक पुरुष बनाते हैं। वे कारक पुरुष जन्मसे ही मुक्त होते हैं। संसारके कल्याणके लिये ही आते हैं। उस कोटिका जो बनता है उसकी बात ही क्या है। यदि कहो ऐसा अधिकार भगवान्के परम धाममें जानेपर ही मिलता है या इसी जन्ममें भी यह पदवी मिल सकती है? परम धाममें तो मिलता ही है, यहाँपर भी मिल जाता है। जिसका यह ध्येय होता है कि सबका कल्याण हो जाय। ऐसे पुरुषोंको भगवान् यहाँ भी अधिकार दे देते हैं।

उच्चकोटिकी बात तो है सबको भोजन कराकर भोजन करना।

तीन प्रकारसे क्षुधाकी निवृत्ति होती है—

१. साधु, ब्राह्मण क्षेत्र आदिमें भोजन लेकर कर लेते हैं।

२. न्यायसे पैसा उपार्जन कर भोजन करते हैं।

३. हजारों आदमियोंको भोजन कराकर भोजन करते हैं।

क्षुधाकी निवृत्ति तीनोंकी ही होती है, किन्तु सबसे श्रेष्ठ पुरुष वह है जो सबको भोजन कराकर भोजन करता है। इसी प्रकार मुक्ति भी तीन तरहसे होती है—

१. जिस जगह हम बैठे हैं यह मायापुरी है। काशी आदि सप्त पुरियोंमें जो मरता है वह मुक्त हो जाता है। यह सदावर्तकी तरह होनेवाली मुक्ति है, मुक्तिमें कोई अन्तर नहीं है।

२. जो एकान्तमें रहकर भजन-साधन करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। वे न्यायसे पैसा कमाकर भोजन करनेवालेके समान हैं।

३. जो संसारके कल्याणके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके हैं, जिस-किस प्रकारसे संसारका कल्याण हो इसीके लिये जिनका प्रयत्न है, वह सदावर्त बाँटकर भोजन करनेवाला है।

चेष्टा तो यही करनी चाहिये कि जबतक सारे संसारका कल्याण न हो जाय, बार-बार संसारमें जन्म लेते रहें। यह काम भगवान्‌ने ले रखा है। जो मनुष्य रात-दिन संसारके कल्याणमें तुले हुए हैं, वे भी भगवान्‌के समान ही हैं।

हमें यह लक्ष्य रखना चाहिये कि चाहे अपना कल्याण न हो, संसारका कल्याण होना चाहिये।

नारायण　　नारायण　　नारायण

कलहसे बचे, भक्ति करे

भगवान्ने अपनी प्रजाको उपदेश दिया। उनका कितना विनयका व्यवहार है, यह विनय हमलोगोंको सीखनी चाहिये। कोई अनीतिकी बात कह डालूँ तो आप भय छोड़कर मना कर देना। कितनी विनय, कितनी सरलता है, इस प्रकार कहकर कह रहे हैं—वही मेरा सेवक है, वही मेरा मित्र है, वही मेरा प्यारा है, जो मेरी आज्ञाके अनुसार चलता है। यह भगवान्का भाव है। भगवान् इस प्रकार कह सकते हैं।

मेरा तो यहाँ यही कहना है कि मेरी प्रार्थना जो मानता है मैं उसका सेवक हूँ। मैं तो सब प्रकारसे अयोग्य हूँ। न तो मेरा अधिकार है, न योग्यता है, फिर भी आप लोग सुनना चाहते हैं, इसलिये आपकी सेवामें निवेदन करता हूँ। माता-पिता बालकोंकी तोतली बोली सुनकर भी प्रसन्न हुआ करते हैं। व्याख्यान, उपदेश, आदेश तो वे ही पुरुष दे सकते हैं, जो स्वयं काममें लाते हैं। हितकी बात जो होती है वह गड़ जाती है। जिस वाणीमें ओज, जोश होता है, जो वाणी विनययुक्त होती है, वह हृदयमें प्रवेश कर जाती है। सत्यवादी पुरुष ही उपदेश दे सकते हैं। स्वयं जो आचरण करते हैं, वे ही उपदेश देनेके अधिकारी हैं। मैं कहूँगा सत्य बोलना चाहिये, आप मेरी ओर देखेंगे कि यह सत्य बोलता है या नहीं। मैं यदि सत्य बोलता होऊँगा तो बोलनेका थोड़ा प्रभाव होगा।

आजकलके समयमें जो कहते हैं स्वयं उसे नहीं करते इसलिये प्रभाव नहीं होता। पूर्वकालमें विरक्त त्यागी पुरुष होते थे, उनके

प्रवचन-तिथि—ज्येष्ठ शुक्ल ४, शुक्रवार, संवत् २००१, दिनांक २३-५-१९४४, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

वचन सुननेको नहीं मिलते। लोग उनके वचन सुननेके लिये लालायित रहते। ऐसे पुरुषोंका थोड़ा भी वचन काम कर जाता है। ऐसा पुरुष लाखों-करोड़ोंमें ही कोई एक होता है। ऐसे पुरुषको कहाँसे लायें? बाकी पुरुष तो हाय धन, हाय धनमें लगे हुए हैं। आपके देखते-देखते कितने लखपति, राजा महाराजा मर गये, आज उनका नाम-निशान ही नहीं हैं। यही दशा उनकी होगी, जो अर्थके दास हैं। रुपयोंका लोभी जिस प्रकार रुपयोंकी उपासना करता है, इस प्रकार भगवान्‌का लोभी भगवान्‌की उपासना करे तो भगवान् मिल जायँ। रुपये मिलना तो प्रारब्धके हाथ है, भगवान्‌का मिलना प्रारब्धके हाथ नहीं है। भगवान् तो प्रेमसे मिल जाते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

आग दियासलाई घिसनेसे प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार जो नामजप प्रेमसे जपते हैं, वहाँ भगवान् प्रकट हो जाते हैं। भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये, प्रेम होता है भजन, ध्यान और सत्संगसे। यदि कहो हमसे ध्यान नहीं होता तो केवल नामके जपसे ही भगवान्‌में प्रेम हो जाता है।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

किन्तु दुःखकी बात है आपलोग देख रहे हैं कितने लोग आपके सामने ही जा रहे हैं, हमलोग सब जानेवाले ही हैं। कोई भी संसारमें रहनेवाला नहीं है। ऐसी परिस्थिति देखकर भी आपके जागृति नहीं हो रही तो फिर कब होगी। श्रुति कहती है—उठो, जागो और महापुरुषोंके पास जाकर उस तत्त्वको जानो, किन्तु हम इतने मोहनिद्रामें सोये हुए हैं कि हमारी आँखें नहीं खुलती हैं।

कई आदमी बद्रिकाश्रम जानेवाले हैं, उनके लिये थोड़ी बात कही जाती है।

सबसे प्रेम हटाकर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। चलते हुए भगवान्‌के नामका जप तथा स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। यह सबसे बढ़कर बात है।

दृष्टि सामने रखकर चलना चाहिये। इधर-उधर नहीं देखे, जिससे कोई जीवहिंसा न हो जाय और स्वार्थ छोड़कर दूसरोंको आराम देना चाहिये। यह वशीकरण मन्त्र है। किसीको वशमें करना हो तो उसकी सेवा करो तथा उसके गुण गाओ। महात्माको वशमें करना हो तो यही करो, देवताओंको वशमें करना हो तो यही करो। घरवालोंको वशमें करना हो तो यही करो। स्वार्थ छोड़कर दूसरोंको सुख पहुँचाओ। यदि सुख नहीं पहुँचा सको तो दु:ख मत पहुँचाओ। याद रखो दूसरेको सुख पहुँचानेके समान कोई धर्म नहीं है, दु:ख पहुँचानेके समान कोई पाप नहीं है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

यह खूब ध्यानमें रखे। सत्य वचन बोले, झूठ, कपट करके हम किसीके साथ धोखेका व्यवहार करते हैं तो धन तो यहीं रह जाता है, उसे तो दूसरे ही भोगते हैं, हमें नरकमें जाना पड़ता है। मधुमक्खियाँ शहद इकट्ठा करती हैं, सारी दुनिया शहद खाती है। वह शहद मक्खियोंका इकट्ठा किया हुआ है। वह पैर पीटती रह जाती हैं, खाते हैं दूसरे ही, इसी प्रकार आप झूठ, कपट करके धन इकट्ठा करते हैं, लोग उसे भोगेंगे। आपका समय गया सो गया, बाकीका समय भगवान्‌के भजन-ध्यानमें लगाना चाहिये।

पाया परम पद हाथसे जात गई सो गई अब राख रही को।

तीर्थ तीन बातके लिये है। वहाँ तीन अर्थोंकी सिद्धि होती है। तीर्थोंमें रुपया तो खर्च होता है, रही तीन चीज—धर्म, काम और मोक्ष। जो नीच पुरुष हैं वे तो कामनाकी पूर्तिके लिये जाते

हैं। गंगा माई बेटा, पोता देना। जो धर्मके पालनके लिये जाते हैं वे उनसे श्रेष्ठ हैं। जो आत्माके कल्याणके उद्देश्यसे जाते हैं वे सबसे श्रेष्ठ हैं। तीर्थोंमें जायँ तो दूसरेकी चीज काममें नहीं लेनी चाहिये। किसीसे सेवा नहीं करवाये, अपनेसे हो सके तो सेवा करनी चाहिये। कोई अपंग, साधु और महात्मा मिल जाय तो तन, मन तथा धनसे उसकी सेवा करो और तीर्थोंमें ऐश, आराम एवं भोग इनका कतई त्याग कर देना चाहिये। जहाँ कहीं जमीनमें सो गये, जो कुछ आ गया खा-पी लिया, जल कहीं पिया जाय तो गर्म या ठण्डा करके पीया जाय। जहाँ तक हो सके मिठाई आदि नहीं खानी चाहिये। क्योंकि यह हजम कम होती है और ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। पवित्रतासे रहना चाहिये। गंगास्नान करना चाहिये। अपना कोई साथी हो तो उसे मार्गमें छोड़कर नहीं चला जाना चाहिये। उसे साथमें ही रखना चाहिये। महाभारतकी कथा है—युधिष्ठिर आदि तीर्थ यात्राके लिये गये, कुत्ता साथ हो गया। उन्होंने कुत्तेका भी त्याग नहीं किया। आप तीर्थयात्रा जायँ, साथी बीमार हो जाय तो उसे छोड़कर नहीं जाना चाहिये। बहुत-से भाई लोग उसे वहीं छोड़ देते हैं। बद्रिकाश्रम जाते हैं तो भगवान् उसे महान् पापी समझकर उससे हट जाते हैं। भगवान् कहते हैं साक्षात् जो चेतनमूर्ति है, उसका तो तुमने तिरस्कार किया और मेरे दर्शन करने आया है, यह बड़ा पाप है। भगवान्के दर्शन होते हों तो भी नहीं होते। श्रेष्ठ पुरुष साथी शरणागतका त्याग नहीं करते। जो त्याग करते हैं वे नीच गतिको प्राप्त होते हैं। एकनाथजी महाराज बड़े भक्त हुए हैं। रामेश्वरम्में चढ़ानेके लिये गंगोत्रीसे जल लेकर चले, रास्तेमें प्यासे गधेको पिला दिया, शिवजी प्रकट हो गये।

यात्रामें भगवान्के नामका जप तथा स्वरूपका ध्यान करें तथा बन सके तो सेवा करें, यह विशेषता है।

अब माता-बहनोंके लिये कुछ बात कही जाती है। पाँच भाई इकट्ठे होकर रह सकते हैं, पाँच माताएँ एक जगह नहीं रह सकतीं, खटपट हो जाती है। यहाँ एक कमरेमें बीस-बीस, पचीस-पचीस पुरुष तो टिक सकते हैं, किन्तु एक कमरेमें दो घरकी स्त्रियाँ नहीं रह सकतीं। माता-बहनोंसे प्रार्थना है कि इस घोर कलिकालमें आपको अपना सुधार कर लेना चाहिये। मनुष्यका शरीर मिला है यह बड़ा दुर्लभ है, इसे मिट्टीमें नहीं मिलाना चाहिये। जो स्त्रियाँ लड़ाई-झगड़ा करती हैं, उनको नरकोंमें भी जगह नहीं मिलती। जिस घरमें झगड़ा है, उस घरमें कलियुग प्रवेश कर गया, ऐसा समझना चाहिये। इसे घरसे निकालकर फेंक देना चाहिये। सब एक मत हो जायँ तो कलियुगके बापकी सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे घरमें प्रवेश कर सके। जहाँ कलह है वहाँ कलियुग है, दुःख है। जहाँ सुमति है, वहाँ सम्पत्ति है, सतयुग है। जहाँ कलह होगी, वहाँ उसका पति क्लेश आयेगा, क्लेश नाम दुःखका है। जब स्त्री-पुरुष दो इकट्ठे होते हैं, तब उनकी सन्तान होती है, कलह-क्लेशकी सन्तान है काल। जब कलह होती है तो कोई कुएँमें गिरकर मरता है, कोई विष खाकर मरता है, सारा घर विनष्ट हो जाता है। इसलिये घरमें कलह न करें, शान्तिसे समझकर काम लें, इसका इलाज भगवान्की भक्ति है। भगवान्की भक्ति जिसके हृदयमें वास करती है वहाँ काम-क्रोध नहीं आते। तुलसीदासजीने कहा है—

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

जिसके हृदयमें भगवान्की भक्तिरूपी मणि वास करती है

वहाँ काम-क्रोधादि निकट नहीं आ सकते।

भक्तके हृदयमें क्रोध क्यों नहीं होता? क्रोध होता है प्रतिकूल होनेपर, अनुकूलमें क्रोध नहीं होता। मनके विरुद्ध कौन करता है? भगवान् करते हैं। मनके प्रतिकूल अनिच्छा, परेच्छासे जो कुछ आकर प्राप्त होता है, वह तुम्हारे प्रतिकूल है, पर भगवान्के मनके अनुकूल है। उनकी आज्ञासे हो रहा है। तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये स्वयं भगवान् कर रहे हैं। भगवान्की अनुकूलतामें अपनी अनुकूलता माननी चाहिये, यदि ऐसा नहीं मानते तो आप भगवान्के भक्त नहीं हैं। भक्त क्या मालिकके विरुद्ध जाता है। भक्तका लक्षण स्वामीके अनुकूल होना है, वह स्वामीकी अनुकूलतामें ही अनुकूलता मानता है। माता-बहनोंसे प्रार्थना है कि यही हमारा सनातन धर्म है कि किसीपर क्रोध न करें, धर्मके सम्बन्धमें मनुस्मृतिका एक श्लोक याद कर लेना चाहिये—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६। ९२)

धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच (पवित्रता), इन्द्रियोंको वशमें करना, ज्ञान, विद्या, सत्य एवं क्रोधका त्याग—ये दस धर्मके लक्षण हैं।

माता-बहिनोंसे प्रार्थना है कि किसीसे लड़ाई-झगड़ा न करें। बद्रिकाश्रम जायँ तो वहाँ प्रतिज्ञा करें कि न किसीकी निन्दा करेंगी, न किसीको दुःख पहुँचावेंगी, सबसे प्रेम करेंगी, सबको सुख पहुँचाना बड़ी उत्तम मोहिनी विद्या है। वहाँपर ये दोष छोड़कर आना चाहिये। नहीं तो आपको स्त्रियाँ ताना मारेंगी कि धिक्कार तेरे बद्रीनारायणको। तेरे बुरे आचरणोंसे भगवान्को लोग

गाली देंगे। लोग गीता पढ़कर झूठ-कपट करते हैं, लोग कहते हैं धिक्कार तेरी गीताको।

तीर्थोंमें आकर सुधार करना चाहिये। वही बुद्धि आपकी रही तो बद्रीनारायण जाकर क्या लाभ हुआ। तुम्हारी बुद्धि नहीं सुधरी स्वभाव नहीं सुधरा तो तुम्हारे सुधारकी क्या आशा है? जबतक तुम्हारेमें काम, क्रोध और लोभ रहेंगे, तबतक निश्चय ही तुम्हें नरकका द्वार देखना पड़ेगा। ये आत्माका पतन करनेवाले हैं। इनका त्याग होता है भगवान्‌की भक्ति करनेसे, भगवान्‌की भक्ति जहाँ वास करती है वहाँ ये पासमें नहीं रहते।

कागभुशुण्डिजी जहाँ रहते थे वहाँ एक योजन तक काम, क्रोध और लोभ नहीं आते थे। जो स्त्री अपने आपका सुधार नहीं कर सकती, वह दूसरोंका क्या सुधार करेगी? उसका जीवन व्यर्थ है।

काम, क्रोध और लोभ इनकी माँ कौन है? आसक्ति, जिससे ये तीनों पैदा हुए हैं। ये मरते हैं ईश्वरकी भक्तिसे। भक्ति क्या? भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान। चलते, उठते और बैठते यह ध्यान रखे कि भगवान् हमारे साथ हैं। वाणीसे या श्वाससे नामका जप करें। ईश्वर-भक्तिकी ऐसी महिमा है कि विष भी पी ले तो अमृत हो जाय, जिस प्रकार मीराबाई और प्रह्लादने पीया। उस भक्ति बिना शान्ति मिलनेकी नहीं है इसलिये भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

इसलिये हमें हमारे हृदयमें भक्तिरूपी मणि धारण करनी चाहिये, जिससे काम, क्रोध, लोभ आदि सबका नाश हो सकता है।

नारायण नारायण नारायण

साधककी क्रमशः उन्नति

आगन्तुक दोष शीघ्र हट सकते हैं, किन्तु जो दोष हृदयमें, मन-बुद्धिमें जमे हुए हैं उनका निकलना कठिन है। आगन्तुक दोष—जैसे किसीके साथ कुसंग हो गया, संगके कारण कोई दोष आ गया तो वह शीघ्र मिट सकता है। जो दोष स्वभावमें प्रविष्ट हो जाते हैं उनका दूर होना कठिन है। प्रारम्भमें मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें लगता है तो इतना समझकर लगता है कि यह बात अच्छी है, अपने लिये लाभप्रद है, कल्याणकारक है। जिस प्रकार कुसंग है, इसी प्रकार यह सत्संग है, यानी अच्छे पुरुष, साधक या शास्त्रके संगसे यह काम आरम्भ होता है और पूर्वके यदि कोई संस्कार हों तो वे जागृत हो जाते हैं, वे सहायता करने लग जाते हैं। इसलिये शास्त्रोंमें सत्संगकी विशेष महिमा गायी गयी है। सत्संगके बिना यह बात सम्भव नहीं है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(रामचरितमानस ७। ६१)

सत्पुरुषोंके संगके बिना मोह, अज्ञान दूर नहीं होता। जैसे बिना सूर्यके उदय हुए अन्धकारका दूर होना कठिन है, उसी प्रकार सत्संगके बिना अज्ञान दूर होना कठिन है, क्योंकि सत्संगके बिना हरिकी कथा नहीं मिलती और हरिकी कथा, हरिके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यकी कथा, हरिके नाम-रूप, लीलाकी कथा, हरिकी महिमा और हरिका जो कुछ भी विषय है वह सत्संगसे ही मिलता है। हरिकी कथा ही सूर्य है, इसके बिना अज्ञान दूर नहीं

हो सकता और अज्ञान दूर हुए बिना भगवान्‌में दृढ़ अनुराग नहीं हो सकता। मामूली प्रेम तो भले ही हो जाय किन्तु दृढ़ प्रेम सम्भव नहीं है। संसारमें प्रेम और आसक्तिमें अज्ञान ही हेतु है। हरि हैं तो सब जगह, पर प्रेमके बिना नहीं मिलते—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

भगवान् शंकर देवताओंकी सभामें कह रहे हैं कि हरि सब जगह समान भावसे व्यापक हैं और वे प्रेमसे मिलते हैं, इस बातको मैं जानता हूँ। शिवजी नहीं जानेंगे तो कौन जानेगा? आरम्भमें सत्संग अच्छे काममें लगानेका साधन है। सत्संगकी बातें सुननेपर जितने भी बुरे काम हैं, बुरे आचरण हैं, बुरा वातावरण है, ये कुछ बुरे मालूम देने लगते हैं। फिर थोड़ा और आगे बढ़नेपर ये जितनी बुरी बातें हैं, उसको ऐसी बुरी मालूम देती हैं कि सुहाती ही नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी हरि की भक्तिमें ये पाँचों न सुहात।
बिषय भोग निद्रा हँसी जगतप्रीति बहुबात॥

मनुष्य जब भगवान्‌की भक्तिमें लग जाता है, उसके हृदयमें जब भक्तिके संस्कार जागृत हो जाते हैं तो ये पाँच बातें उसको अच्छी नहीं लगतीं—संसारके विषय-भोग, निद्रा, हँसी-मजाक, संसारमें प्रीति और बहुत बोलना—इन सबमें घृणा-सी हो जाती है, ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। पहले तो दूसरे लोगोंमें बुरी आदतोंको देखता है तो उनसे घृणा होती है, अच्छी नहीं लगतीं। बादमें अपने द्वारा यदि ऐसा काम हो तो वह अच्छा नहीं लगता। स्वतः आकर प्राप्त होवे तो इन सब बातोंमें विरक्ति हो जाती है। संसारमें जितने बुरे कर्म हैं, जिनको हम दुराचार कहते हैं, वे तो अच्छे लगते ही नहीं, किंतु आलस्य, भोग, प्रमाद, पाप,

निद्रा, दुर्गुण और दुराचार—ये भी अच्छे नहीं लगते। प्रथम तो दूसरे मनुष्योंमें ये देखता है तो ये बात उसको अखरती है। अपनेमें तो अवगुण हैं, परन्तु अखरते नहीं किन्तु दूसरोंके अवगुण उसको अखरते हैं कि दूसरोंमें ये हैं। यह झूठ बोलता है, यह क्रोध करता है, इसमें कामका दोष है, लोभका दोष है, क्रोध है, मोह है, कपट है, चोरी है, बेईमानी है, दगाबाजी है—दूसरोंके भीतर दोष देखता है तो ये उसको खटकता है। दूसरोंको अच्छे रूपमें देखना चाहता है। अपनेमें तो ये दोष घटते हैं, किंतु दूसरोंमें जब देखता है तो उसको ये बुरे मालूम देते हैं कि देखो, इसमें ये दोष हैं। इसके बाद अपने द्वारा जो खराब क्रिया होती है, हृदयके भीतरके तामसी भाव हैं; जैसे—अधिक सोना या प्रमाद या आलस्य तथा बाहरका तामसी व्यवहार, जिसे हम पाप कर्म कहते हैं, जैसे झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, जुआ खेलना इत्यादि जो शास्त्रविरुद्ध आचरण हैं उनमें घृणा होती है, बुरे मालूम देते हैं। ये अच्छे नहीं लगते। इसके बादमें राजसी क्रिया—संसारके ऐश-आराम और भोग, इनके होनेपर मनमें विरक्ति होती है। उसके बादमें उत्तरोत्तर ऐसे बुरे काम उससे तो नहीं बनते, किंतु मनमें उनका संकल्प हो जाता है, बुरी भावना हो जाती है। जैसे बाहरमें क्रोध जाग उठता है तो व्यवहार बिगड़ जाता है, ऐसा तो नहीं होता, किंतु भीतरमें क्रोधकी वृत्ति जाग उठती है। इसी प्रकार भीतरमें कामकी वृत्ति जाग उठती है, किंतु विवेक और विचारके द्वारा उसे बाहरमें प्रकट नहीं होने देता। ऐसे ही हृदयमें लोभकी वृत्ति भी जाग उठती है, किंतु बाहरके व्यवहारमें नहीं लाता, नियन्त्रण रखता है, इन्द्रियोंके ऊपर भी नियन्त्रण रखता है। इन्द्रियोंमें दोषकी भावना तो हो जाती है,

किन्तु व्यवहारमें नहीं लाता। आगे जाकर इन्द्रियोंमें जो दोषकी भावना होती है—खोटा काम करनेकी, व्यभिचार करनेकी, हिंसा करनेकी इत्यादि जो पाप कर्म हैं, इन्द्रियोंके भीतरमें वे दोष कम हो जाते हैं। फिर उसके बाद न्याययुक्त जो विषय हैं, उनपर उसकी दृष्टि चली जाती है, पर पापमय वृत्तिसे उसका मन हटता है। लोभ तो है, किंतु न्यायसे पैसे मिलें तो लेना है, पर पापसे चाहे लाख रुपये मिलें, हमें छूना भी नहीं है। किंतु लोभ होनेके कारणसे न्यायसे जो प्राप्त हो जाय, वह लेना है। स्त्री सहवासमें आसक्ति है, अपनी स्त्रीके साथ तो सहवास करता है, किंतु दूसरी नारीसे परहेज है, इसे बुरा समझता है एवं इससे दूर रहता है। कोई मनके विपरीत करता है तो भीतरमें तो क्रोधकी वृत्ति जाग्रत होती है, पर व्यवहारमें न्याययुक्त क्रोधको लाता है तो उचित है, न्याय है। अनुचित क्रोधका त्याग कर देता है। उसके बादमें अपने न्याययुक्त स्वार्थको लेकर जो क्रोध आता है उसका भी त्याग कर देता है। न्याययुक्त कामका भी त्याग कर देता है, न्याययुक्त लोभका भी त्याग कर देता है, वे इन्द्रियोंतक नहीं पहुँच सकते। मनमें फिर भी रहते हैं। आगे जाकर मन जब शुद्ध हो जाता है तो जागृत अवस्थामें ये सब दोष उसके मनमें नहीं आते, क्योंकि वहाँ सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है। वहाँ सत्त्वगुणका साम्राज्य हो जाता है, फिर उसके हृदयमें पापकी, भोगोंकी तामसी, राजसी फुरणा नहीं होती। साधनके विषयकी फुरणा या प्रारब्धके भोगसे होनेवाली फुरणा ही होती है। प्रारब्ध भोगके लिये या साधनके लिये या परोपकारके लिये फुरणा होती है, यज्ञ करना, दान देना, तप करना अथवा और भी सात्त्विक फुरणा; जैसे—तीर्थ करना, व्रत करना, उपवास करना और

महासात्त्विक; जैसे—भगवान्‌का भजन करना, ध्यान करना, सत्संग करना, मन इन्द्रियोंका नियन्त्रण करना—ये सब फुरणा हुआ करती है। राजसी और तामसी फुरणाका प्रायः जाग्रत अवस्थामें त्याग हो जाता है, किंतु स्वप्नावस्थामें फिर भी राजसी, तामसी फुरणा हो जाती है, क्योंकि ये संस्कार उसके हृदयमें जमे हुए हैं। स्वप्नमें जबतक राजसी और तामसी वृत्तियाँ होती हैं, तबतक मन एकदम शुद्ध नहीं है। शुद्ध है, किंतु एकदम शुद्ध नहीं है। एकदम शुद्ध हो जानेपर फिर स्वप्नमें भी इस प्रकारकी क्रिया या भाव जागृत हो ही नहीं सकते। उदाहरणके लिये जैसे मारवाड़, गुजरातके ब्राह्मण और वैश्य हैं, उनके हृदयमें मांस, अंडा, मदिराके संस्कार नहीं थे। उनको ऐसा स्वप्न भी कभी नहीं आता कि मैं अंडा खरीदकर लाया या खाया, उसका क्या स्वाद है? कभी ऐसा स्वप्न भी नहीं आता, क्योंकि संस्कार नहीं है। परस्त्रीगमनका कभी स्वप्न आ जाता है, क्योंकि उसके भीतरमें उस विषयकी पापभावना है। जब ये पापभावना एकदम हृदयसे उड़ जाती है तो फिर ऐसा भाव स्वप्नमें भी नहीं होता। जाग्रतमें तो होता ही नहीं और स्वप्नमें भी नहीं होता। जैसे पतिव्रता स्त्रीके लिये तुलसीदासजी कहते हैं—

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

पतिव्रताकी अलग-अलग श्रेणी है। जो सबसे बढ़कर पतिव्रताओंमें भी शिरोमणि है, उस स्त्रीके हृदयमें मेरे पतिको छोड़कर और कोई पुरुष है यह भावना जाग्रतमें तो है ही नहीं, किंतु जाग्रतकी दृढ़ताके कारण स्वप्नमें भी उसके हृदयमें ऐसी भावना नहीं होती है। इसी प्रकार जो बहुत अच्छे साधक हैं, उनके हृदयमें परस्त्रीकी भावना स्वप्नमें भी नहीं होती। स्वप्नमें

नहीं होकर उसकी बुद्धिके भीतर जबतक किसी अंशमें आसक्तिका आदर है, तबतक परमात्माकी प्राप्तिमें कुछ विलम्ब होता है। जैसे धनमें लोभ वृत्ति तो नहीं है न न्यायसे, न अन्यायसे, किंतु रुपया एक ऐसी चीज है जिससे सब चीज बाजारमें मिल सकती है। यहाँतक कि स्त्री-पुत्र भी मिल सकते हैं। संसारके सारे पदार्थ अर्थके अधीन होनेके कारण रुपयोंसे वह चीज मिल सकती है। यदि अर्थके प्रति बुद्धिके अंदर आदर है तो परमात्माकी प्राप्तिमें थोड़ा विलम्ब हो सकता है। आदर होकर भी वह अन्यायसे तो नहीं लेता, किंतु न्यायसे भी यदि रुपया प्राप्त हो, रुपयोंकी वृद्धि हो तो उसमें उसका वैराग्य रहता है। अर्थ भावमें सत्ता होते हुए भी उसका उसमें वैराग्य रहता है। ऐसे ही अपनी धर्मपत्नीमें भी उसका वैराग्य हो जाता है। उसके साथ भी सहवास करनेकी इच्छा नहीं होती। पर उसके विशेष आग्रह होनेपर ये घटना कभी घट भी जाय तो एक प्रकारसे वैराग्यके नशेमें ही घटती है। उसके भीतर संस्कार नहीं रहते। कभी नीतिको लेकर, धर्मको लेकर, उसके हितको लेकर क्रिया हो जाती है। जैसे क्रोधका जो स्वरूप है, वह अपने स्वार्थके लिये नहीं, अपितु उसके कल्याणके लिये व्यवहारमें भले ही आवे तो वह दोषयुक्त नहीं है। इसी प्रकार अपने जितने अवगुण हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता, अहंकार आदि जितने हृदयमें रहनेवाले अवगुण हैं उनका रूप बदल जाता है। वे जो बाधक थे, वे सब साधक हो जाते हैं।

ये सब साधक कैसे हो जाते हैं? साधक पुरुषके लिये ये सब साधन कैसे बन जाते हैं? साधन बननेसे ही तो वे उस साधकमें शामिल होंगे। कामना है भगवान्‌की प्राप्तिके लिये,

भगवान्‌के भजन-ध्यानके लिये, भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेम होनेके लिये। यह कामना होती है कि भगवान्‌का संयोग हो, वियोग कभी हो ही नहीं। भगवान्‌में परम श्रद्धा हो, भगवान्‌का भजन-ध्यान निरन्तर बने, परम प्रेम हो, इसी प्रकार लोभ भी सात्त्विक भावका बन जाता है। सात्त्विक भावका लोभसे क्या तात्पर्य है? लोक संग्रहके कारण परमार्थ विषयका लोभ; जैसे—लोभी आदमी रुपया इकट्ठा करता है, उसके लिये असली धन वही है जिस धनसे भगवान् मिलें। भगवान्‌में प्रेम बढ़ाना, भगवान्‌में अपनत्व बढ़ाना कि भगवान् मेरे हैं। भगवान्‌की प्राप्तिमें जो सहायक हैं, उन गुणोंकी वृद्धि करना—उसके विषयमें लोभ होना। क्षमा, दया, शान्ति, समता, संतोष, सरलता, वैराग्य—इन सब सात्त्विक गुणोंको बढ़ाना, सात्त्विक कर्मोंकी वृद्धि करना, जिनका फल भगवान्‌की प्राप्ति है। जिस पूँजीसे भगवान् मिलें, वह पूँजी बढ़ाना—यह लोभ है। इसी प्रकारसे क्रोध है। क्रोध भी सात्त्विक भावमें परिवर्तित हो जाता है। जो बाधक हैं वे हमारे साधन बन जाते हैं, साधनमें सहायक बन जाते हैं। जैसे हमारे भीतर जो अवगुण हैं उन अवगुणोंको नष्ट करनेके लिये उनके ऊपर ही चोट करना है। हमारेमें जो बुरी आदत चली आयी है, उसमें कुछ सुधार हुआ है, कुछ बाकी है। उसको मिटानेके लिये एकदम टूट पड़ता है। जो बुरी आदत, बुरे भाव हैं—हमारे भीतरमें जो थोड़ा-बहुत अहंकार है। पहले अहंकारकी बात निकाल दी तो वह उसपर यह संयम करता है कि अब तुम्हारेसे अहंकारका व्यवहार हुआ तो आज भोजन नहीं करना। उसपर दृढ़ रहता है। आज तुम्हारा यह अपराध हुआ तो तुम्हें यह दण्ड दिया जाता है। दण्ड ग्रहण करनेवाली जो वृत्ति है वह

भी क्रोधकी वृत्ति है। अपनेमें क्रोधकी जो वृत्ति है उसका प्रयोग करता है। अपनी इन्द्रियोंके द्वारा कोई राजसी व्यवहार हो जाय या मनके भीतर कोई राजसी भाव आ जाय, कोई स्वार्थकी भावना आ जाय या कोई आसक्तिकी भावना आ जाय तो उसपर क्रोध करता है, एकदम उसका विनाश कर डालता है। वह क्रोध हमारे लिये सहायक हो जाता है और मोह भी सात्त्विक होता है। मोहका स्वरूप वास्तवमें तामसी है, किंतु वह भी जब बदल जाता है तो वह भी सहायक हो जाता है। वेदान्तके सिद्धान्तके अनुसार मैं और मेरापन अज्ञानका ही कार्य है। देहमें जो अहंता-ममता है, यह अज्ञानका ही कार्य है, किंतु इस अहंता-ममताका स्वरूप बदल जाता है। मैं ईश्वरका सेवक हूँ, ईश्वर मेरे स्वामी हैं—एक भगवान् ही मेरे हैं और कोई नहीं है। मेरे भगवान् और मैं भगवान्का, मैं जो कुछ करता हूँ वह भगवान्की आज्ञासे, भगवान्के लिये करता हूँ। ज्ञानके सिद्धान्तमें जहाँ सत्त्वगुणसे भी परेकी स्थिति है। भगवान् बताते हैं—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥

(गीता १४। १९)

उस कालमें गुणोंसे अन्य किसी कर्ताको नहीं देखता है यानी जिस कालमें द्रष्टा साक्षी हुआ पुरुष गुण गुणोंमें ही बरतते हैं और गुणोंसे अन्य कोई कर्ता है ही नहीं, आत्मा कर्ता नहीं है और आत्मा गुणोंसे अत्यन्त परे है। इस प्रकारका भाव जब दृढ़ हो जाता है, शरीरसे सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, भगवान् कहते हैं कि वह मेरे भावको यानी मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। जो ये मोहके कारण, अज्ञानके कारण अपनेमें वृत्ति होती है वह सहायक हो

जाती है और ईर्ष्याका स्वरूप भी एकदम बदल जाता है। यह ईर्ष्या सात्त्विक हो जाती है। सात्त्विक कैसे? दूसरेके साधनको तेज देखकर ईर्ष्या करता है कि मेरा साधन भी तेज हो। जैसे विष्णुदत्त ब्राह्मणके साथ राजा चोलने होड़ लगायी कि यदि ईश्वरमें तुम्हारी भक्ति अधिक होगी, अधिक प्रेम होगा तो भगवान् तुम्हें पहले मिलेंगे और मेरी होगी तो मुझे पहले मिलेंगे। दोनों इस काममें लग गये, एक दूसरेके साथ ईर्ष्या है, किंतु यह ईर्ष्या कल्याण करनेवाली है। दूसरेके साधनको देखकर अपने कमजोर साधनको हम खूब जोशके साथ, तेजीके साथ करें तो इस प्रकारकी ईर्ष्या भी कल्याण करनेवाली है। इसी तरहसे गर्व, घमण्डका भी रूप बदल जाता है। मनके भीतर यह रहता है कि यह साधन अमुक व्यक्तिने कर लिया तो मैं क्यों नहीं कर सकता।

यह गर्व भी सहायक है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि और भी जितने अवगुण हैं, सबका परिवर्तन हो जाता है। वे जो बाधक हैं, सब हमारे सहायक बन जाते हैं। जब बुद्धिमें व्यसनका अत्यन्त अभाव हो जाता है, तब उसी कालमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, एक मिनटका भी विलम्ब नहीं हो सकता। परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद उनके मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें सात्त्विक, राजसी और तामसी जितने अवगुण मैंने बतलाये वे तो रहते ही नहीं हैं। शरीर तो गुणोंका एक समूह है, इसलिये शरीरके भीतर शरीर-निर्वाहके लिये ये सात्त्विक, राजसी, तामसी वृत्तियाँ रहती हैं, किंतु विरक्त पुरुषका उनके साथ सम्बन्ध नहीं रहता। वे किस प्रकारसे रहती हैं? भगवान्‌ने गीतामें बतलाया—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥

(गीता १४। २२)

हे अर्जुन! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा करता है।

प्रकाश तो सत्त्वगुणका कार्य है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें जो जागृति है, प्रकाश है, बुद्धिमें जो ज्ञानका बाहुल्य है वह बुद्धिका प्रकाश है, इन्द्रियोंमें जो हरेक कार्योंके विषयमें जानकारी है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषय हैं वह इन्द्रियोंमें प्रकाश है। देहमें आलस्यका अभाव होकर जो जागृति है वह देहमें प्रकाश है। मन, बुद्धि, इन्द्रियोंमें चेतनता है, जागृति है, वह सत्त्वगुणका कार्य है। मनमें जो काम करनेके लिये वृत्ति होती है उसका नाम प्रवृत्ति है और इन्द्रियोंके द्वारा कार्य आरम्भ करनेके लिये जो प्रवृत्ति होती है वह इन्द्रियोंके विषयोंकी प्रवृत्ति और फिर इसमें जो प्रवृत्त हो जाता है, काममें लग जाता है, वह क्रिया और स्थूल प्रवृत्ति है। मन, इन्द्रियाँ और शरीरकी जो प्रवृत्ति काम करनेमें लगनेकी है, उतना ही रजोगुणका अंश है और जो रजोगुणकी बातें हैं, वे सब नष्ट हो जाती हैं। जैसे लोभ है, रुपयोंमें आसक्ति है—ये सब नष्ट हो जाते हैं। ये दोष ही हैं, फिर उसके द्वारा चेष्टा मात्र ज्ञानीकी तरह होती है।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।

(गीता ३। ३३)

अपने स्वभावके अनुसार ज्ञानवान् भी चेष्टा करता है। ज्ञानवान्‌के हृदयमें अवश्यम्भावी प्रारब्ध भोगके लिये क्रिया तो

होती है, उसके लिये मनमें स्फुरणा भी होती है। स्वप्न भी उसको आता है। ये स्फुरणा होनी और स्फुरणाके अनुसार क्रिया होनी इसका स्वरूप तो राजसी है, किंतु ये दोषी नहीं हैं। इसी प्रकार तामसीपनेमें क्या रहता है? मोह— मन, इन्द्रिय और बुद्धिका मोहित होना। मोहित होना क्या है? आलस्य आना, नींद आना। दोनों अलग चीजें हैं, वे मोहसे भिन्न हैं। यह अज्ञान है। गीताके चौदहवें अध्यायमें जहाँ यह प्रकरण आता है, वहाँ अज्ञान और मोह दोनोंको अलग-अलग कहा है। कहीं तो मोहको निद्रा-आलस्यके नामसे कह दिया। वहाँ मोह शब्द नहीं आता; जैसे—

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥

(गीता १८। ३९)

निद्रा, आलस्य और प्रमाद तामसी हैं, इनसे उत्पन्न होनेवाला सुख तामसी सुख है। निद्रा और आलस्य जो प्रारब्धके अनुसार अवश्यम्भावी है, उतना ही आता है। ऐसा नहीं कि रात-दिन सोता रहे, पड़ा रहे। किंतु इसकी तीन अवस्था होती है—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। तीन प्रकारकी ही वृत्तियाँ होती हैं— सात्त्विक, राजसी और तामसी। किंतु वे शुद्ध होती हैं, बाँधनेवाली नहीं होतीं। इसलिये ज्ञानीके द्वारा जो कर्म होते हैं वे कर्म कर्म ही नहीं हैं। इसकी परीक्षा क्या है?—

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति॥

(गीता १४। २२)

जब वे प्रवृत्त होते हैं, आकर प्राप्त होते हैं तो उनसे द्वेष नहीं करता कि क्यों आये? द्वेष कौन करे। घरमें द्वेष करनेवाला कोई हो तो द्वेष करे—आये तो आओ। जब ये चले जाते हैं तो उनकी

आकांक्षा नहीं करता, इच्छा नहीं करता। इच्छाका नामोनिशान मिट जाता है। किसके लिये कौन इच्छा करे। दूसरे जो उच्चकोटिके साधक हैं उनमें भी इच्छा होती है। उनमें भी ये सब बातें थोड़ी-थोड़ी होती हैं, उसका रूप थोड़ा दूसरा है। सांसारिक जो राजसी, तामसी पुरुष हैं उनमें तो प्रत्यक्ष देखनेमें ही आती है। उनमें बहुत अन्तर होता है। किंतु साधक भी यह चाहता है कि मेरे मन, बुद्धिमें जागृति होवे, यह ज्ञान हो कि साधनके लिये क्या करूँ? नींद आती है तो वह चाहता है कि नहीं आये तो अच्छी बात है, क्योंकि नींद साधनमें विघ्न है। उसको हटानेकी चेष्टा करता है। उस नींदमें द्वेष-बुद्धि होती है। संसारके भोगोंकी ओर यदि प्रवृत्ति हो जाय तो वह रोता है। ये हमारे लिये बाधक हैं। किसी समय स्वास्थ्य ठीक नहीं है और दो दिन नींद नहीं आयी, नींदकी आवश्यकता है, वह उस समय भी नींदकी इच्छा नहीं करता। नींदसे द्वेष भी नहीं है, आकांक्षा भी नहीं है। शरीरको नींदकी आवश्यकता है, नींद नहीं आती है तो उसके लिये परवाह नहीं करता और जब आती है तो उसके साथ द्वेष नहीं करता। प्रवृत्त होवे तो उससे द्वेष नहीं करे। जब निवृत्त हो जाय तो आवश्यकता होनेपर भी आकांक्षा नहीं करे कि नींद आये तो ठीक है। इसी प्रकार जब देहमें प्रकाश नहीं होकर गाढ़ सुषुप्ति हो जाती है तो उसके मनमें यह नहीं आता कि गाढ़ सुषुप्ति क्यों? मन, बुद्धिमें विशेष जागृति नहीं है तब उसकी इच्छा नहीं करता। जागृति हुई रहती है तो ये आकर प्राप्त हों—यह इच्छा नहीं करता। समाधि अवस्था हो गयी तो उसके साथमें कोई विरोध नहीं, हो गयी तो हो गयी और आकर प्राप्त हो गयी तो कोई द्वेष नहीं है। समाधि नहीं

लगती, ध्यान नहीं लगता तो उसके लिये आकांक्षा नहीं करता कि मेरा ध्यान लग जाय तो ठीक है, वह सिद्ध पुरुष है। साधक चाहता है कि मेरा ध्यान लग जाय तो अच्छी बात है, समाधि लग जाय तो अच्छी बात है। साधन कालमें कोई विक्षेप नहीं हो तो अच्छी बात है। मनमें चंचलता नहीं आये तो अच्छी बात है। आलस्य नहीं आये तो अच्छी बात है। विघ्न आकर प्राप्त होते हैं तो वह हटाना चाहता है, द्वेष करता है, किंतु जो सिद्ध महात्मा है, उसे कोई भी वृत्ति सात्त्विक, राजसी और तामसी आकर प्राप्त हो तो उससे द्वेष नहीं करता और निवृत्त हो जाय तो उसकी आकांक्षा नहीं करता। ये परमात्माकी प्राप्तिके उत्तरकालकी उस ज्ञानी महात्माके हृदयकी स्थिति रहती है।

परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषके हृदयमें कैसा भाव होता है—यह बतलाया जाता है। जो भक्तिके द्वारा सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं, जिनकी आत्मा परमात्मामें विलीन हो जाती है या अद्वैत मार्गके द्वारा जो ब्रह्ममें विलीन हो जाते हैं और संसारमें उनका शरीर लोगोंकी दृष्टिमें है उस शरीरके अन्तःकरणमें ब्रह्म ही है। गुणातीत पुरुषको लक्ष्यमें रखकर उसकी बात कह रहा हूँ। अद्वैत मार्गके द्वारा जो उस ब्रह्मको प्राप्त हो गया, ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म हो जाता है। ज्ञानके सिद्धान्तके अनुसार साधक ब्रह्म ही बन गया है। ब्रह्म बननेके बाद उसकी जो सिद्धावस्था है उस अवस्थामें उसका जो अन्तःकरण है उसकी बात कह रहा हूँ। उसके अन्तःकरणमें संसारका अत्यन्त अभाव है और परमात्माका एकदम प्रत्यक्ष भाव है। परमात्माका तो भाव और संसारका अभाव है। यह संसार उसको वास्तवमें नहीं दीखता, सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। किन्तु व्यवहार कालमें यह संसार स्वप्नवत्

दीखता है। कल्पनामात्र उसकी सत्ता है। यह संसार उसके अन्तःकरणमें स्वप्नवत्-सा दीखता है। जैसे किसीके नेत्रोंमें दोष हो जाता है तो आकाशमें उसे तिरविरे दीखते हैं, जाले-से दीखते हैं। साथमें वह यह समझता है कि आकाशमें ये दीखते तो हैं, परन्तु हैं नहीं। इनकी आकृतिमात्र है, किंतु वस्तुतः हैं नहीं। दीखते हुए भी उसको अभावके रूपमें देखता है, उसका अभाव ही समझता है। आकाशमें उसकी यह बुद्धि है कि आकाश वास्तवमें है, किंतु आकाशकी जो सत्ता है वह व्यावहारिक सत्ता है। समझानेके लिये आपको बतलाया जाता है कि आकाशकी व्यावहारिक सत्ता होते हुए भी व्यवहारमें उसको सत्य समझता है। आकाशका तो भाव है और तिरविरेका अभाव है। दोनों पदार्थ उसके अनुभवमें हैं। भावके रूपमें आकाशका अनुभव कि यह तो सोलह आना है और उस तिरविरेका भाव जो तिरविरेकी प्रतीति आकृति है वह अभावके रूपमें दीखती है। तिरविरे यानी संसार और जिस मन, बुद्धिमें संसार उसको कल्पित दीख रहा है, वह मन, बुद्धि भी किसको दीख रही है? जैसे अन्तःकरणकी तीन वृत्तियाँ हैं—मन, बुद्धि और अहंकार। यह अहंकार, आत्म-अभिमान, कर्तापनका अभिमान, देहाभिमान, अनित्य पदार्थमें निहित बुद्धि—ये अविद्या है। विद्या और अविद्या तथा उनके सब कार्य—ये सब तो नष्ट हो जाते हैं। ये अहंकार नहीं रहते, किंतु मन रहता है, बुद्धि रहती है, अन्तःकरणकी वृत्तिरूपी अहंकार उसमें रहता है, किंतु कर्ताका सम्बन्ध न होनेके कारण वह नाममात्रका ही अहंकार है। बुद्धि भी नाममात्रकी है, मन भी नाममात्रका ही है। उसके मनसे जो क्रिया बनती है वह भावी जन्म देनेवाली नहीं होती, क्योंकि आत्माके साथ उसका सम्बन्ध

नहीं है। जैसे गैसबत्ती (पेट्रोमैक्स) है, उसमें रेशमकी जाली जल जाती है, जलनेके बाद भी जबतक टंकीमें तेल रहता है तबतक वह प्रकाश देती है, तेल उसकी आकृति, भाव है। छू करके देखो तो राखकी आकृति है, जली हुई है, उसमें कोई दम नहीं है। इसी प्रकार उसके मन, बुद्धि और अहंकार भस्मकी तरह हैं। भुने हुए बीजके समान हैं। वे बीज केवल आकृति मात्र हैं, उन्हें खानेसे तुष्टि, पुष्टि होती है, किंतु बोनेसे अन्न पैदा नहीं होता। चना, जौ कोई भी बीज है, भुननेके बाद वह आकृतिमात्र है; किन्तु वह उपजाऊ नहीं होता। इसी प्रकारकी उसकी आकृति है। जैसे मैंने गैसबत्तीकी जालीके बारेमें बतलाया, वास्तवमें वह इससे भी कमजोर है। इन सबकी भी काल्पनिक सत्ता ही है। ये बीजोंकी सत्ता तो व्यावहारिक सत्ता है और उनकी काल्पनिक सत्ता है। वस्तुत: तो है ही नहीं, प्रतीति मात्र ही है। जैसे मरुभूमिमें जल दीखता है, किन्तु है नहीं। आकाशमें तिरविरे दीखते हैं; किंतु आकाशमें तिरविरे हैं ही नहीं। इसी प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार और शरीर, इन्द्रियोंकी आकृति दीखती है, किंतु ये वस्तुसे कोई चीज नहीं है। अन्त:करणमें जो ये सब चीज दीखती हैं, इन्द्रियोंमें जो चीज दीखती है, इन्द्रियाँ भी द्वार हैं, मन, बुद्धि और अहंकार भी द्वार हैं, ये द्वार भी एक प्रकारसे कल्पित ही हैं। इनकी भी काल्पनिक सत्ता ही है। वास्तवमें सत्ता नहीं है, इनमें प्रतीत होनेवाले पदार्थ और जिनमें ये प्रतीत होते हैं वे अधिकरण इन सभीकी काल्पनिक सत्ता है। अन्त:करणमें सृष्टि की, स्वयं अन्त:करणकी सत्ता भी काल्पनिक सत्ता है, कल्पना मात्र है। स्वप्नमें जो दृश्य देखा, जागनेके बाद उस दृश्यका काल भूतकाल हो जाता है और इसका जो काल है वह वर्तमान काल रहता है।

इसलिये स्वप्नवत् कहा जाता है, स्वप्न नहीं। दूसरी चीज यह है कि परमात्माका स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप है, उसका स्वरूप विज्ञानानन्द है, उस जगहमें एकदम प्रत्यक्षकी तरह यानी प्रत्यक्ष ही है। प्रत्यक्षकी तरह क्यों कहा जाता है? जैसे स्वप्नवत् कहा गया, इसी प्रकार प्रत्यक्षकी तरह है। उसका अन्तःकरण शुद्ध दर्पणके समान है। शुद्ध दर्पणमें हरेक चीजका प्रतिबिम्ब आता है। यहाँ ब्रह्मका जो सच्चिदानन्दघन स्वरूप है, वह स्वरूप उसमें प्रतिबिम्बित होता है। जैसे किसी दर्पणमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब आता हो तो उसको हम यह कह सकते हैं कि चन्द्रमाके सदृश है। चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब चन्द्रमाके सदृश ही होता है; किन्तु यह नहीं कह सकते कि यह दीखनेवाला सच्चा चन्द्रमा है, वह तो बिम्बके रूपमें है। इसी प्रकार असली ब्रह्मका स्वरूप उसमें प्रतिबिम्बके रूपमें आता है। समझानेके लिये हम कहते हैं, किन्तु चेतन परमात्माका किसी जड़ दर्पणमें प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता। वास्तवमें अन्तःकरण तो जड़ ही है, परमात्मा चेतन है। वह प्रतिबिम्ब-सा प्रतीत होता है, इसलिये यह बात कही जाती है कि स्वप्नकी तरह है। इसी प्रकार कहा जाता है कि यह परमात्माके प्रतिबिम्ब-सा प्रतीत होता है। महापुरुष जो वाणीके द्वारा उनका वर्णन करते हैं, वेदोंमें जितनी व्याख्या आती है, वह चाहे ब्रह्माजीका वचन हो, चाहे ऋषियोंका वचन हो, चाहे स्वयं भगवान्‌के वचन ही क्यों न हों। भगवान् भी तो वाणीके द्वारा यही कहते हैं कि परमात्मा सत् हैं, चेतन हैं, आनन्द हैं और सत्-चितसे परे भी हैं और उन्हें सत्-असत् भी नहीं कहा जा सकता है। बेचारी वाणीके द्वारा तो उसका लक्ष्य कराना ही है। परमात्मा सम है, अनन्त है, व्यापक है, पूर्ण है, अपार है,

शान्तिमय है, इन शब्दोंसे उस ब्रह्मका लक्ष्य कराया जाता है। उसके हृदयमें वे प्रत्यक्षकी तरह हैं और वाणीके द्वारा वे उसका वर्णन करते हैं, पुस्तकोंमें छापा जाता है। अभिप्राय यह है कि उसके हृदयमें परमात्माका जो भाव है वही वाणीके द्वारा कहा जाता है। वह एकदम प्रत्यक्षकी तरह है, इसीलिये यह बात कही जाती है कि ज्ञानी महात्माओंको प्रत्यक्ष हो जाता है। इस प्रत्यक्षका भी दो प्रकार है—एक तो वह ज्ञानी महात्मा ब्रह्म ही बन जाय तो प्रत्यक्ष है, यह असली प्रत्यक्षता है। एक उसके हृदयमें भगवान् प्रत्यक्षकी तरह प्रतीत होते हैं। यह प्रत्यक्षता तो साधकोंको उपदेश देनेके लिये है और उसको प्रापणीय वस्तु प्राप्त हो जाती है। प्राप्त हो करके वह पुरुष भी उसका वर्णन नहीं कर सकता। उस पुरुषका शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ भी नहीं कह सकते। वह स्वयं भी नहीं कह सकता। स्वयं कैसे कहेगा? वहाँ तो वाणी नहीं है, कहना तो वाणीसे बनेगा। उस शरीरके बीचमें वह आ ही नहीं सकता। यदि मान लो, कल्पना कर लो कि वह आये तो भी वाणीके द्वारा उसका वर्णन नहीं कर सकता। दूसरी बात यह रही कि भक्तिके मार्गसे गया हुआ पुरुष एक तो ब्रह्ममें विलीन हो गया, पर एक विलीन नहीं होकर प्रत्यक्ष रूपसे है। उन दोनोंको यह संसार भगवान्‌की लीलाके रूपमें प्रतीत होता है। उसके हृदयका कैसा भाव हो जाता है? भक्तिमान् पुरुषोंके हृदयकी बात गीताके बारहवें अध्यायमें बतलायी गयी है। इसमें और उसमें अन्तर है? भक्तिमार्गमें भी समता आ जाती है और ज्ञानमार्गमें भी समता आ जाती है। हृदयमें क्या अन्तर रहा? यह अन्तर रहा कि उसके हृदयमें तो संसारका अत्यन्त अभाव सा या यों कहो कि स्वप्नवत् या काल्पनिक सत्ता

रहती है और परम ब्रह्म सच्चिदानन्दका एकदम प्रत्यक्ष भाव रहता है। भक्तिमार्गमें संसारका अभाव नहीं बतलाया जाता है। भक्तिमार्गके साधकको यह प्रतीत होता है कि अन्तःकरणमें यह संसार लीलाके रूपमें रहता है, भगवान्‌की लीला हो रही है—इसलिये उसका अन्तःकरण भगवान्‌के अन्तःकरण जैसा हो जाता है। जैसे भगवान्‌को हम परम दयालु, परम सुहृद्, परम स्नेही कहते हैं वह भी परम दयालु, परम स्नेही, परम सुहृद् हो जाता है। इसलिये भगवान्‌ने उसमें ये गुण बताये—‘**अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च**’। सारे भूतोंमें द्वेषका अभाव और सबपर प्रेम है, सबमें मित्रता या दया है, जैसे भगवान् परम दयालु, परम स्नेही, परम सुहृद् हैं, ऐसे ही वह पुरुष भी इसी प्रकार है। उसके हृदयमें ऐसे उच्चकोटिके शुद्ध भाव होते हैं। ज्ञानीके हृदयमें इसकी अपेक्षा दूसरी बात होती है, विलक्षण बात होती है। उनके हृदयमें उदासीनता होती है। उदासीनता भक्तमें भी होती है। ज्ञानीके हृदयमें संसारका अभाव होनेसे उसमें दया, प्रेम है यह नहीं कह सकते। वह संसारसे, शरीरसे इतना रहित है कि उपेक्षा रहती है। भक्तमें दया है, प्रेम है और ज्ञानीमें उपेक्षा है।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥

(गीता १४। २३)

जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्द परमात्मामें एकीभावसे स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता।

यहाँ इस बातपर जोर दिया कि उसके शरीरपर किसी

प्रकारका कोई आघात पड़े, तो वह उदासीनकी तरह रहता है, पक्षपात रहितके तरह रहता है। सदा उसकी नीति यह रहती है कि जो कुछ भी घटना होती है उसमें एकदम पक्षपात रहित होकर रहता है। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके द्वारा वह चलायमान नहीं होता, यानी गुणोंका उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गुण अपने आप ही बरतते हैं, ऐसा समझकर वह स्थित रहता है। स्वयं तो वह ब्रह्ममें स्थित रहता ही है। उसका अन्तःकरण भी अचल रहता है। किंचित्मात्र भी उसमें गुणोंको लेकर कोई चेष्टा नहीं होती है। जैसे एक पुरुष है, उसे अपने हाव-भावसे, कटाक्षसे स्त्री भी चलायमान नहीं कर सकती और वह पुरुष स्वयं भी स्त्रीको देखकर चलायमान नहीं होता। उसी प्रकार गुणोंके द्वारा वह विचलित नहीं किया जा सकता और स्वयं भी गुणोंके प्रभावमें आकर विचलित नहीं होता।

नारायण! नारायण! नारायण! नारायण! नारायण!

सच्चे व्यापारकी विशेषता और महापुरुषोंकी बातें

मारवाड़में एक बनिया था। वहाँ एक बार अकाल पड़ गया, इसलिये वह पंजाब चला गया। पंजाबमें उसका एक मित्र था। वह किसान था, खेती किया करता था। बनियेने देखा खेतमें गेहूँ, चना, जौ आदि बहुत-से धान लहलहा रहे हैं, खेतको देखकर बनिया बहुत प्रसन्न हुआ। बनिया मित्रसे मिला, पूछा—खेतमें क्या लगा है? उसने कहा—गेहूँ, चना, जौ आदि लगे हैं। बनियेने कहा—मारवाड़में भीषण अकाल पड़ जानेके कारण खानेके लिये भी नहीं मिल रहा है, इसलिये मैं तो स्त्री, बाल-बच्चोंसहित तुम्हारे पास आया हूँ, तुम हमारी सहायता करो। मित्रने बनियेको सलाह दी कि तुम भी मेरी तरह खेती करो। बनियेके पास एक हजार रुपये थे, वह उसने अपने मित्रको सौंप दिये और कहा कि मेरे पास तो एक हजारकी यही पूँजी है, जैसे तुम कहो वैसा ही किया जाय। उसने मित्रकी दो सौ बीघा जमीन लेकर खेती करना प्रारम्भ किया। हल जोतकर बोनेमें सौ रुपयोंका बीज लग गया, चार सौ रुपये हल जोतने वालेकी मजदूरी दे दी गयी। इस प्रकार पाँच सौ रुपये लग गये, बाकी पाँच सौ बनियेके पास रहे। जबतक खेती तैयार न हो जाय तबतक खानेको चाहिये। कुछ समय बाद जमीनसे छोटे-छोटे अंकुर फूटने लगे। बनियेने खोदकर देखा कि जमीनसे गेहूँ, चना आदि फूट-फूटकर बाहर निकल रहे हैं। बनियेको मालूम नहीं था, दौड़कर मित्रके पास गया, कहा—अनाज डाला था, उसमेंसे जुहारे-से निकल रहे हैं, अनाज सब नष्ट हो गया। मित्रने

प्रवचन—दिनांक १७-४-१९५०, प्रातः ९ बजे।

कहा—तुम्हारा खेत सब खेतोंसे अच्छा है। हजारों मन अनाज पैदा होगा। बनिया किसानकी बातपर विश्वास करके चुप हो गया। कुछ दिन बाद बीज बढ़कर बड़े हो गये। फिर बनियेने मित्रके पास जाकर कहा—अनाजका तो घास-ही-घास हो गया, अब उनका क्या होगा, सब गधे और पशु आदि चर जायँगे। किसानने बनियेको समझाया कि तुम्हारे खेतका बहुत-सा काम तो हो गया, जल्दी ही खेत तैयार होनेवाला है। खेतकी रक्षा करनेके लिये गाय-भैंस आदि पशुओंसे बचानेके लिये खेतमें बाड़ लगा देनी चाहिये। बनियेने खेतके चारों तरफ बाड़ लगा दी। एक सौ रुपये करीब और लग गये। किसानने कहा खेतकी निराई कर दो। बनियेने पूछा निराई क्या होती है? किसानने कहा खेतमें अनाजको छोड़कर जो फालतू घास उग रही है, जिसके कारण अनाज बढ़नेमें बाधा पड़ती है, उस फालतू घासको उखाड़कर फेंक दो। बनियेने किसानके बतलाये अनुसार निराई भी कर दी। खेतमें निराई कर देनेके बाद अनाजके पौधोंमें गेहूँकी बालियाँ, चना आदिमें फलियाँ लगने लग गयीं। बनियेने देखा बालियाँ-सी क्या है? उसको फोड़कर देखा तो दूध-सा निकला। दौड़कर किसानके पास गया, कहा—पौधोंमें दाने पड़े हैं, गेहूँ, चनासे हैं, फोड़नेसे दूध निकलता है। कच्चे-कच्चे लगते हैं। किसानने समझाया कच्चेसे ही वे पक्के होंगे। बनियेने समझा वास्तवमें बात ठीक कहता है। शान्त हो गया। बनियेने पूछा—पक्के किस प्रकार होंगे? किसानने कहा—अपने आप पक जायँगे तुमको कुछ परिश्रम नहीं करना है। तुमको तो अब पक्षियोंसे रक्षा करनी है, ताकि वे कच्चे दानोंको समाप्त न कर दें। जिस प्रकार पहले बाड़ लगाकर पशु, गधोंसे रक्षा की थी, इसी प्रकार अब

पक्षियोंसे रक्षा करो। जब खेतमें पक्षी आयें। चूँ-चूँ करें, उनकी बोली सुननेसे तुम समझ जाना ये शत्रु आ गये, तब तुम पत्थर उठाकर उनकी तरफ मारना, पत्थर फेंकनेसे वे सब भाग जायँगे। बनियेने कहा—ठीक है, किसानके बतलाये अनुसार पालन किया। थोड़े दिनोंमें बनियेकी खेती पक गयी। अनाजके ढेर-के-ढेर लग गये। अनाजका ढेर देखकर बनिया बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी आत्मामें बड़ी शान्ति मिली कि मेरा पंजाब आना और यह सब परिश्रम करना सफल हो गया।

यह तो आपको एक दृष्टान्त बतलाया। अब उदाहरण देकर आध्यात्मिक विषयको समझाया जाता है, जिसे बच्चे, स्त्री, बालक सब समझ सकें। उसका तात्पर्य समझकर उसके अनुसार साधन किया जाय तो आपलोगोंका निश्चय ही कल्याण हो सकता है। उसमें किसी प्रकारकी शंकाकी बात नहीं है। यह एक ही दृष्टान्त समझकर साधन करनेपर कल्याण करनेवाला बन सकता है।

उस बनियेकी जगह आपको मनुष्य, जीवात्मा या साधकको समझना चाहिये। बनियेके देशमें अकाल पड़ गया। उस स्थानपर साधकको परमात्माकी प्राप्तिका न होना यह अकाल या दुर्भिक्ष है। अन्नकी जगह परमात्मा ही वास्तवमें जीवन है, जिसके बिना प्राणोंका रहना कठिन हो जाता है। वह बनिया किसानके पास गया। यहाँपर असली मित्र कौन है? महात्मा। पंजाबके स्थानपर महापुरुषोंका स्थान, मारवाड़से साधकके रहनेका स्थान समझना चाहिये। बनिया अपने साथ कुटुम्ब, बाल बच्चोंको पंजाब ले गया। स्त्रीकी जगह बुद्धि, बाल बच्चोंके स्थानपर मन, इन्द्रियाँ, इन मन, इन्द्रियोंके सहित साधक महापुरुषके निवासस्थानपर गया। वहाँ बनियेने देखा कि चारों ओर अनाज-ही-अनाज उग

रहा है। साधक जब महात्माके पास गया। वहाँ देखा कि महात्माके चित्तमें बड़ा भारी आनन्द-शान्ति बनी हुई है—*'सदा दिवाली संतके आठों पहर आनन्द।'* इस प्रकार महापुरुषको परमात्माकी प्राप्ति देखकर बहुत प्रसन्न होता है। महापुरुष बहुत अच्छे हैं। इसी प्रकार बनियेने किसानको खूब आनन्दमग्न, सम्पन्न देखा। तब बनियेने कहा—हम तो दाने-दानेके लिये तरस रहे हैं, तू हर समय प्रसन्न रहता है। किसानने कहा मैं तो खेती करता हूँ, इसलिये प्रसन्न हूँ, तू भी खेती करे तो तेरे भी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहेगा। तू भी मेरी तरह ही सम्पन्न हो जायगा। तब बनियेके पास जो कुछ पूँजी थी, उसने वह पूँजी अपने मित्रको सौंप दी। इसी प्रकार साधकने भी महापुरुषसे उस स्थितिका अनुभव करनेका उपाय पूछा। किसानने खेती करना बतलाया था, खेतीकी जगह महापुरुषने साधकको बतलाया—तू भगवान्‌की भक्ति कर, उससे तुझे भी भगवत्प्राप्ति होकर, तू भी मेरी तरह ही सम्पन्न हो जायगा। साधकवाली पूँजी क्या है? समय ही साधककी सबसे बड़ी पूँजी है। उसे महापुरुषकी सेवामें समर्पण कर दिया, तब महापुरुषने कहा—तुमको जो बात बतलाऊँ वह साधन करना चाहिये। किसानने बीज डलवाये, यहाँ बीज क्या है? भगवान्‌का नामजप। 'ॐ' या रामका नाम यहाँपर बीज है। बीजसे अंकुर फूटते हैं, इसी प्रकार भगवत्-भजनसे जो अंकुर फूटते हैं, उससे पापोंका नाश होता है। बनिया जैसे किसानको अंकुरकी कहता था, किसान कहता तुम्हारा खेत बहुत ठीक है। इसी प्रकार साधक भजन करता है। मन नहीं लगता, तब महापुरुषके पास जाकर कहता है, भजनमें मन नहीं लगता। तब वे कहते हैं कि क्या पहले चित्त लगता था, नहीं लगता था,

तब भी पहलेकी तरह तो विषयोंमें मन नहीं जाता। यदि जाता है तो कम ही जाता है, इसलिये सुधार ही हुआ है, क्योंकि अभी तो साधनका प्रारम्भिक रूप ही है। साधक फिर भगवान्‌के भजन, ध्यानमें लग गया, उसकी चित्तवृत्तियाँ ठीक होने लग गयीं। जैसे बनियेने जाकर किसानसे कहा—खेतमें घास-ही-घास हो गयी, किसानने कहा—थोड़े दिन ठहरो, तुम्हारा खेत भी हरा-भरा हो जायगा, अनाजके ढेर-के-ढेर लग जायँगे, भण्डार भर जायगा। जिस प्रकार वैद्य मनुष्यकी नाड़ी देखकर बतलाते हैं—तुम्हारी स्थिति ठीक है। इसी प्रकार महापुरुष भी साधककी साधनकी स्थिति देखकर साधकको बतलाते हैं कि तुम्हारे दुर्गुण हट रहे हैं और तुममें सद्‌गुण-सदाचारकी वृद्धि हो रही है। इससे मालूम पड़ता है कि तुम्हारे मनकी स्थिति अब ठीक हो रही है। लेकिन तुम उसको नहीं समझ सकते। तुम्हारे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंकी स्थिति पहलेकी अपेक्षा बहुत ठीक है। फिर महापुरुष साधकको एक चेतावनी देते हैं कि जैसे खेतकी पशु आदिसे रक्षाके लिये बाड़ लगाते हैं। साधकका प्रारम्भिक साधन ही कच्ची खेती है। कच्ची खेतीको खानेवाले गधे कौन हैं? जो साधकको नमस्कार करते हैं, उनको मालपुआ खिलाते हैं, जो साधककी लोगोंमें कीर्ति-प्रचार करके उनके साधन, तपस्या एवं भजनको लूट कर ले जाते हैं। इस प्रकारके गधोंसे साधकको बचाव करना चाहिये। इन गधोंका तो पेट भरता है, साधककी सारी खेती समाप्त हो जाती है। यानी उनको रुपया, धन, आरोग्यता आदि बहुत-सा साधारण मामूली स्वार्थ ही सिद्ध होता है, साधककी पूँजी उनकी तपस्या, भक्ति, सद्‌गुण, सदाचार आदि बहुत उच्चकोटिकी चीजें नष्ट हो जाती हैं। सिद्ध

महापुरुषोंके तो ये चीजें नष्ट नहीं होतीं, लेकिन साधकका तो साधन नष्ट हो ही जाता है। ये तो साधक ही है न। सिद्ध पुरुषने साधकको यह बात बतलायी कि इन गधोंका जरा ध्यान रखना, नहीं तो तुम्हारी खेती नष्ट हो जायगी। बाड़ लगानी चाहिये तथा निराई भी कर लेनी चाहिये। तपरूपी बाड़ तथा गुणोंके साथ अवगुण बेकार घास हैं। इनसे साधन बढ़नेमें व्यवधान पड़ता है, उस फालतू घास अवगुणको उखाड़कर फेंक देना चाहिये। इसलिये जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, डर और अहंकार आदि अवगुणों और दुर्गुणोंका घर है, उसकी जड़को उखाड़कर फेंक देना चाहिये। जब जड़ ही समाप्त हो जायगी, तब ये साधनमें किस प्रकार बाधक हो सकते हैं। घासकी जड़ उखाड़ डालनेसे पौधोंको बढ़नेका मौका मिलता है। इसी प्रकार अपने साधनमें दुर्गुणोंकी निराई कर दी, तब उसका साधन बढ़ जायगा। खेतीमें दाने पड़ गये, यहाँपर दाने हैं परमात्माका ध्यान लगना, समझना चाहिये जो परमात्माका ध्यान है यही दाने हैं। उस साधकको परमात्माका ध्यान करनेसे खूब प्रसन्नता और आनन्द मिलने लगा। साधक महापुरुषके पास गया, कहा—दानोंमें दूध क्या है। महात्माने कहा—ध्यानका रसास्वाद। अभी भगवद्ध्यान पका नहीं है, इसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। दाने तो अपने आप पक जायँगे। जैसे अन्नकी खेतीको पशुसे रक्षाके लिये बाड़ लगायी थी, अब ऊपरके पक्षियोंसे रक्षा करनी है। ये पक्षी कौन हैं? साधककी कीर्ति करनेवाले, चूँ-चूँ करनेवाले, ये साधक बड़े योगी हैं, बड़े महात्मा हैं, बड़े सिद्ध हैं, उनका क्या कहना, आदि-आदि। उनको पत्थर मारना क्या है? उनको मुँहतोड़ जवाब देना, ताकि भविष्यमें फिर वे नाम भी न ले

सकें। साधकने ऐसा ही किया। उसकी खेती पक गयी। उसके घरमें अन्नका ढेर लग गया। वह अन्नकी ढेरी क्या है? परमशान्ति, परमानन्द एवं प्रसन्नता। ये सब खेती हुई उस बीजके कारण जो प्रारम्भमें बोया गया था। वह बीज क्या था? परमात्माका नाम। उस बीजसे क्या पैदा हुआ? परमात्माका स्वरूप या परमात्माका नाम दोनों एक ही वस्तु है। भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। महर्षि पतंजलिने बतलाया है—'**तज्जपस्तदर्थ भावनम्।**' उस परमात्माके जपके साथ उसके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। यह नाम ही बीज है और यही उसका फल। यह बीज अल्प चीज थी, पर बढ़कर बादमें महान् हो गयी। भगवान्‌के नामका जप एवं स्वरूपका ध्यान सभी कर सकते हैं। जो चीज खेतमें बोयी जाती है वही उससे अनन्त होकर मिलती है। जो मनुष्य अपने सुख और आरामको मिट्टीमें मिलाता है यानी बो देता है, उसको वस्तुतः सुख एवं आनन्द अत्यधिक अनन्त होकर मिलता है। उस बनियेने अपने सुख, साधन और रुपयोंको उनसे अनाज खरीदकर मिट्टीमें मिला दिया, जिसका परिणाम उसको अत्यधिक अनाज मिला एवं वह सुख-सम्पन्न हो गया। इसी प्रकार साधकने भी अपनी भगवन्नामजपरूपी ताकतको भगवान्‌के भजनमें लगा दिया, उससे भगवान् प्रकट हो गये। जैसा बीज होता है वैसा ही वृक्ष भी होता है। आपमें जितनी ताकत है वही आपकी पूँजी है। उसको भगवान्‌के भजन एवं ध्यानमें लगा देना चाहिये। सारी ताकत लगानेपर भी यदि अभी भगवान् नहीं मिलते हैं तो समझना चाहिये कि आगे चलकर निश्चय ही भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे। लेकिन उसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। समय-समयपर खेतीमें

जल सींचा जाता है, तब खेती जल्दी तैयार हो जाती है। अगर खेतीमें स्वाभाविक वर्षा होने लगती है तब तो खेतीमें और पानी देनेकी आवश्यकता नहीं रहती। उस वर्षाके जलसे खेती तैयार हो जाती है। वर्षा न होनेपर कुँआ आदिसे जल सींचकर खेतीको तैयार करना होता है। यहाँ साधकको बिना प्रयास किये महापुरुषका मिल जाना ही वर्षाका जल है। महापुरुषोंके मिलनेसे भी साधनके तेजीसे बढ़नेमें बड़ी सहायता मिलती है। जिस प्रकार वर्षासे खेती हरी रहती है, इसी प्रकार महापुरुषोंके मिलनेपर साधनमें तरी आ जाती है, यानी साधन बढ़ा हुआ रहता है। महापुरुष नहीं मिले तो कुँएसे पानी निकालकर सिंचाईकी तरह परिश्रम करके साधकको महापुरुषोंकी खोज करनी चाहिये, उनके पास जाना चाहिये। उनके अभावमें सत्शास्त्रोंका स्वाध्याय करना भी सत्संग है। इस प्रकार सत्पुरुषोंको खोजनेमें भी परिश्रम एवं सत्शास्त्रोंके स्वाध्यायमें भी परिश्रमकी आवश्यकता है। यह कुएँसे पानी निकालकर उससे खेती सींचनेकी तरह है। दैवयोगसे यदि कहीं महापुरुष मिल जायँ, जिस प्रकार भक्त ध्रुवको नारदजी मिल गये थे। इस प्रकार महापुरुषसे मिल जानेका अवसर मिल जाय तो बहुत उत्तम बात है। उनके बतलाये गये मार्गके अनुसार साधन करना चाहिये। बनियेने खेतमें बाड़ लगायी थी, यहाँ वैराग्य एवं उपरति—यही साधकके लिये साधनकी रक्षार्थ बाड़ है। संसारसे उपराम होना चाहिये, इस बाड़को चारों तरफ लगानेपर फिर रक्षा हो जाती है। इसलिये भजन, ध्यान, सत्पुरुषोंका संग, सत्शास्त्रोंका स्वाध्याय, उपरति एवं वैराग्यका उपार्जन करना चाहिये और दुर्गुण, दुराचार एवं पापकर्मोंको हृदयसे बाहर निकालकर फेंक देना चाहिये।

आपका कोई भी आदर-सत्कार करे तो उसको स्वीकार नहीं करना चाहिये। जब साधकको मालपुआ खिलानेकी चेष्टा हो, उस समय साधकको दूर भागना चाहिये। जो आपकी मान एवं बड़ाई करे, उनको पत्थर मानना चाहिये यानी मान, बड़ाईको स्वीकार नहीं करना चाहिये। इनको स्वीकार करनेसे ही गड़बड़ होती है। यदि किसान समझ ले कि तोता, कोयल, मैना आदि बड़े ही सुन्दर-सुन्दर शब्द सुनाते हैं, उनको खेतमें ही रहने दिया जाय तो उससे अपना क्या नुकसान है। इसका क्या परिणाम निकलता, सुन्दर बोली बोलनेवाले उनके खेतको चुगकर खाली कर देते। उस हरे-भरे खेतकी जगह केवल घास-फूस बाकी रह जाता। बादमें तो बस, बाबाजीकी झोलीमें जेवड़ा (बंधनरूपी रस्सी) रह जाता। फिर साधककी ताकत, सब साधना समाप्त हो जाती।

अब कुछ सभ्यताकी बात बतलायी जाती है। इस सभ्यताको ही सदाचार कहा जाता है। कोई भी वस्तु हो उसमेंसे हमें तो गुण ही ग्रहण करना चाहिये, उसमें जो अवगुण हो उनका त्याग करना चाहिये। हमें तो गुणग्राही बनना चाहिये, यदि पक्षी, पशुमें भी कोई गुण हो तो उसको ग्रहण करना चाहिये। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

हे तात! ईश्वरकी उस मायाकृत सृष्टिमें गुण और दोष अनेक हैं उनकी कोई गिनती नहीं है। किसीके गुण एवं अवगुण इन दोनोंको नहीं देखनेका नाम ही गुण है, गुण देखना चाहिये। अवगुण नहीं देखना चाहिये। यदि कोई अवगुण देखे तो देखनेवालेका अविवेक अर्थात् अज्ञान है। किसीके भी गुण व अवगुणोंकी ओर ध्यान न देना ही गुण है।

व्यापारमें सच्चाईकी ओर ही ध्यान दीजिये। व्यापारमें जैसी सच्चाई, ईमानदारी पहले अंग्रेजोंमें थी, वैसी सच्चाई हम हिन्दुस्तानी भाइयोंमें अब नहीं है। अंग्रेजोंका यह गुण ग्रहण करनेकी चीज है। अंग्रेज लोग जो सच्चाईका व्यापार करते हैं वे व्यापारकी उन्नतिके लिये ही करते हैं, अपनी आत्माके कल्याणके लिये नहीं करते। आप कह सकते हैं हमारा लक्ष्य ऊँचा है, व्यापारके साथ आत्माकी उन्नतिका भी है। अंग्रेज व्यापारमें सच्चाईका व्यवहार करते हैं और रखते हैं, इसलिये वे आपसे श्रेष्ठ हैं। यदि आपलोग सच्चाई एवं निष्काम भावको लेकर व्यापार करें तो आपका व्यापार करना श्रेष्ठ है। अंग्रेजोंके व्यापारकी सच्चाईकी आज दुनियाभरमें छाप है। अंग्रेजोंकी सच्चाईका एक यह भी महत्त्व है कि उनके माध्यमसे जो भी सौदा होता है, उसमें यदि बाजार मंदा हो जाता है, तब भी वे उस सौदेको घाटा खाकर भी स्वीकार कर लेते हैं, बेईमानी नहीं करते और यदि सौदेमें तेजी आती है तब भी जिसके नामका सौदा होता है उसको वह सौदा दिया जाता है। लोभमें पड़कर बेईमानी नहीं करते और हमलोग गेहूँ, चावल, कपड़ा, खाँड़ या सूत आदिका सौदा करते हैं और कभी संयोगवश बाजार घट जाता है, तब क्रेता अपने सौदेको कोई भी बहाना बनाकर नहीं लेता। यदि माल भेज दिया जाता है तो उसमें कमी निकालकर कटौती कर लेता है। इस प्रकारकी बेईमानी करते हैं या जब तेजी आ जाती है तब उस बेचे गये मालमें खोट मिला देते हैं। मालका जो वजन होता है उस वजनको कम कर देते हैं। सूतकी गाँठ है, वजन कम कर देते हैं या बनावटी खोट उसमें मिला देते हैं। इसी प्रकार रूईके सौदेमें खराब रूई देना चाहते हैं। जब

सामने वाला व्यापारी कहता है कि भाई यह रुई खराब है। इस खराब रुईका सौदा मैंने नहीं किया था, मैंने बढ़िया रुईका सौदा किया था, वही मिलनी चाहिये। तब वे उत्तर देते हैं कि हमारे पास तो यही माल है, यदि आपकी इच्छा हो तो सौदा ले सकते हैं, अन्यथा सौदा कैन्सिल कर दिया जायगा। लेकिन अंग्रेजोंमें ऐसी बात नहीं है। वे सच्चाई-ईमानदारीसे लेन-देनका हिसाब रखते हैं। वे व्यापारीको उसका खरीदा हुआ सब माल देते हैं, चाहे बाजार कितना ही तेज क्यों न चला जाय। वे बेईमानी नहीं करते। सौदा किये हुए मालमें जब कभी लाट-घाटका माल रहता है। तब उस मालमें जितना बट्टा होना चाहिये, उस बट्टेसे भी और अधिक नुकसान खाकर वह माल दिया करते हैं, ताकि ग्राहकको किसी प्रकारकी शिकायत न हो। फिर भी यदि ग्राहक किसी प्रकारकी शिकायत करता है तो उस शिकायतको सुनते हैं, लेकिन हमलोगोंमें ऐसी बात नहीं है। अंग्रेज भाई लोग चाहे कम्पनी फेल ही क्यों न हो जाय, लेकिन वे जल्दी बेईमानी नहीं करते, इसलिये आज बाजारमें उनकी हर प्रकारसे साख है। बाजारमें जब मालका खरीद-बिक्रीका काम होता है, तब पूछा जाता है कि खरीददार कौन है? अमुक है। वह यदि मालकी कीमत चार पैसा कम भी देता है तब भी सामनेवाली पार्टी उनको माल बेच देती है, क्योंकि वे जानते हैं कि यह व्यापारी जिस मालका सौदा करते हैं उस मालको चाहे कुछ भी हो जाय, तब भी मालको उठावेंगे। उस समय इन्कार नहीं करेंगे। उस सौदेकी कीमत गिर जानेपर भी जिस भावमें सौदा किया है वही दाम देंगे। कम नहीं देंगे। दूसरे व्यापारियोंको उस व्यापारीके लेनेपर नहीं बेचना चाहते, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि किसी

कारणवश बाजार गिर जायगा तो वे बादमें मालमें झूठी कमी निकालेंगे। उस फर्मको माल खरीदते समय सस्ता मिल जाता है तथा बेचते समय उनका माल तेज दामोंमें बिक जाता है। जिनको खरीदना होता है वह चार पैसा अधिक देकर भी उस फर्मसे खरीदता है। इस प्रकार आपलोग देखें कि सच्चाईका व्यवहार करनेमें प्रत्यक्षमें लाभ है। जो लोग व्यापारी हैं वे इस उदाहरणको ठीक समझ गये होंगे। उनको तदनुसार लाभ भी उठाना चाहिये। इसके अतिरिक्त अंग्रेज लोग अपनी सच्चाईके कारण उनके व्यापारमें जितना आयकर होता है, वह आयकर अपने आप सरकारके कोषमें जमा करवा देते हैं। इसलिये उनके बहीखाते चेक करनेका काम ही नहीं पड़ता। किसी कारणवश चेक भी किये जाते हैं तब भी उनमें किसी प्रकारकी चोरी-छिपावका काम नहीं पाया जाता। लेकिन हमलोगोंमें व्यापारी वर्ग बेईमानी करते हैं, इसलिये उनके बही-खाते बहुत बार चेक किये जाते हैं। आजकल बही-खाता चेक करनेवाले भी बेईमानीसे व्यापारी वर्गसे मिलकर नकली बही-खाते चलानेका प्रोत्साहन देते हैं। कहावत है—*'चोर व कुतिया मिल गयी तो पहरा किसका दे।'* इस प्रकारकी अंग्रेजोंमें और भी अनेक प्रकारकी सभ्यता है और हममें सभ्यताके बदले असभ्यता है। एक समय था जब अंग्रेजोंकी वह सभ्यता हमारी सभ्यताके अन्तर्गत आ जाती थी।

अंग्रेजोंकी यह आधुनिक सभ्यता हमारे प्राचीन सदाचारकी परिपाटीके सम्मुख सर्वथा नगण्य वस्तु थी, पर बड़े दुःखकी बात है कि वह हमारी प्राचीन सभ्यता-सदाचार सब धीरे धीरे लुप्त हो गयी और जो बाकी रही वह भी लुप्त होती जा रही है। अब भी हमारे देशमें बोलने, चलने, बैठने आदि व्यवहारकी

सभ्यता मौजूद है। अब भी बंगालमें कहींपर सभाका आयोजन होता है, उसमें कोई भी आदमी भले ही वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, जब सम्मिलित होने जाता है तब सभामें सबको हाथ जोड़कर हाथको नीचे करके जाता है, वह किसीको लाँघकर नहीं जाता और जब सभामें बैठा हुआ कोई भी व्यक्ति सभासे उठकर बाहर जाता है, तब वह नीचेकी ओर झुककर एवं अपने हाथको आगेकी ओर झुकाकर और अपने मुखकी अत्यन्त विनयकी मुद्रा बनाकर बैठनेवाले सदस्योंसे रास्ता माँगता हुआ ही सभाभवनसे बड़ी सभ्यताके साथ बाहर जाता है। हमलोगोंकी तरह बंदरकी तरह उछलकर, लाँघकर वे नहीं चलते और नहीं जाते। हमारे शास्त्रोंकी सभ्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, लेकिन खेदका विषय है कि आज वह सभ्यता, सदाचार पुस्तकोंमें ही रह गयी है। हम उसको भूलते जा रहे हैं, व्यवहारमें नहीं लाते। हमारे शास्त्रकारोंने बतलाया है कि जब गुरु और शिष्य परस्पर वार्तालाप करते हों, तब उनके बीचमेंसे नहीं जाना चाहिये। चाहे कितनी ही दूरसे होकर क्यों न जाना पड़े, क्योंकि इससे उनका अपमान होता है।

एक विद्वान् ब्राह्मण यदि अग्निके पास बैठा हो तो उनके बीचमेंसे नहीं जाना चाहिये। चाहे वह अग्निहोत्र करके चलनेकी तैयारी कर रहा हो या अन्य कोई भी कर्म कर रहा हो। अपने पूज्य व्यक्ति कहींपर भी बैठे हों, उनके सामनेसे नहीं जाना चाहिये, उनके पीछेसे होकर जाना चाहिये। आजकल अंग्रेजोंमें जो सभ्यता पायी जाती है, वह सभ्यता अधिकांशमें हमारी पुरानी सभ्यताकी ही एक शाखा मात्र है। उसकी मूल जड़ तो हमारी पुरानी सभ्यता ही है। लेकिन खेदकी बात है कि हम उस मूल

सभ्यताकी ओर नहीं देखते। धर्मकी मर्यादाका हमारे शास्त्रोंमें कितना सूक्ष्म रहस्य प्रतिपादित किया गया है, लेकिन हम उस प्राचीन ऋषि-मुनियोंकी सभ्यताकी ओर ध्यान ही नहीं देते। छान्दोग्योपनिषद्‌में एक बहुत सुन्दर कथा आती है—चाकरायण नामक एक ब्राह्मण थे। एक बार उनके देशमें अकाल पड़ गया। चाकरायण एवं उनकी स्त्रीको कहींपर भी खानेको नहीं मिला। भूखके कारण उन लोगोंके प्राणोंके निकलनेकी तैयारी हो रही थी। तब चाकरायण अपनी कुटियासे बाहर निकलकर इधर-उधर घूमने लगे। इतनेमें उन्होंने देखा कि एक महावत हाथीको कुछ खिला रहा था। तब चाकरायण उस महावतके पास गये और कहा—मैं भूखा हूँ। मुझको कुछ खानेके लिये दो। महावत हाथीको जो अनाज खिला रहा था, वह अनाज चाकरायणको खानेके लिये दिया। वह अनाज भिगाया हुआ था। चाकरायणने उस अनाजमेंसे आधा अनाज अपनी धोतीके पल्लेमें बाँध लिया और आधा अनाज खा लिया। आधा अनाज अपनी स्त्रीके लिये बाँध लिया था क्योंकि वह भी तो उसका आधा अंग है और भूखी है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि स्वयं पहले खाता तब वह उसका बचा हुआ कहलाता इसलिये चाकरायणने पहले ही आधा अनाज स्त्रीको अपना अंग मानकर उसके लिये अलग निकालकर रख दिया। इससे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अपने खानेसे बचा हुआ अन्न स्त्रीको नहीं खिलाना चाहिये। अपनेको तो यही लक्ष्य बनाकर रखना चाहिये। फिर भी यदि स्त्री अपने खानेके बाद बचे अन्नको ही खाना पसन्द करती है या खाती है तो यह उसका अधिकार है। लेकिन हमको इस

प्रकारका भाव नहीं रखना चाहिये कि पहले हमलोग ही खा लें और बादमें स्त्रीको खानेको मिले। जब चाकरायणने वह आधा अनाज खा लिया, तब महावतने चाकरायणसे कहा—महाराज थोड़ा जल पी लें। तब चाकरायणने महावतसे कहा—अब मैं तुम्हारे हाथका जल नहीं पीऊँगा। तुम्हारे हाथका जल पीनेसे मेरा धर्म नष्ट होता है। चाकरायणका यह उत्तर सुनकर महावत हँसने लगा और कहने लगा कि महाराज आपने मेरे हाथका भिगाया हुआ अनाज तो खा लिया और यह पानी पीनेमें फिर आपको क्यों आपत्ति है? अब मेरे हाथका जल पीनेसे आपका धर्म किस प्रकार नष्ट होता है? इस अनाजको भिगानेमें भी तो मेरे हाथका ही जल पड़ा है और फिर वह अनाज भी हाथीका खाया हुआ जूठन है। उसको खानेपर तो आपका धर्म नष्ट नहीं हुआ और अब मेरे हाथका जल पीनेसे आपका धर्म नष्ट हो रहा है। यह क्या बात है? तब चाकरायणने महावतको उत्तर दिया कि जब मैंने तुम्हारे हाथका भिगाया हुआ अनाज खाया था, उस समय मेरे प्राणोंके निकलनेकी तैयारी थी, इसलिये तुम्हारे हाथका भिगाया हुआ अनाज भी उस समय प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये खानेकी छूट थी, लेकिन अब उसको खा लेनेपर मेरे शरीरमें शक्ति आ गयी है। मेरे प्राणोंको आधार मिल गया है। इसलिये अब अन्नकी तो बात ही क्या है? तुम्हारे हाथका पानी पीनेकी भी छूट नहीं है, अब तो मैं नदीतक जाकर भी पानी ला सकता हूँ और पी सकता हूँ। उस समय तो आपत्ति काल था, अब वह आपत्ति काल नहीं रहा। देखिये धर्मकी कैसी सूक्ष्म गति है। उस समय केवल पानी पीने मात्रसे ही धर्म नष्ट हो सकता है, पर

उससे पहले आपत्तिकालमें भोजन करनेपर भी धर्म नष्ट नहीं होता। धर्मपालनके सम्बन्धमें हमारी नीयतमें खराबी आनेपर ही हमारा पतन होता है, उसके प्राण निकलनेकी तैयारी थी, उतने कालतक ही उसको उसके हाथका भिगाया हुआ अन्न भी खानेकी छूट थी, उसके बादमें नहीं। शास्त्रकी किस प्रकारकी मर्यादा है। यह सब सोच-समझकर चाकरायणने अपने धर्मकी रक्षा की।

धर्मकी गतिमें बहुत छूट दी गयी है, बहुत ही कम समयके लिये बहुत छोटी छूट दी गयी है। आजकल हम बहानेबाजी करके अपना काम निकालकर अपने धर्मको बुरी तरहसे नष्ट करते हैं, उसका बड़ा भारी अधर्म, पाप हमारे पल्ले पड़ता है। महाभारतके आदिपर्वमें इस प्रकारकी कथा है। एक समयकी बात है कि कुछ डाकू एक ब्राह्मणकी गायें चुराकर ले जा रहे थे। ब्राह्मणने अर्जुनके पास आकर पुकार लगायी कि मेरी गायें डाकू ले जा रहे हैं, उनकी रक्षा करें। ब्राह्मणकी पुकार सुनते ही अर्जुन तैयार हो गये। अर्जुनने यह विचार नहीं किया कि वह सदाचारी ब्राह्मण है या जातिमात्रका। ब्राह्मणके नामसे ही वे बड़े आदर भावसे प्रस्तुत हो गये। ब्राह्मण देवने कहा—राजन्! मेरी गायोंको डाकू ले जा रहे हैं, अभी थोड़ी दूर ही गये हैं, मैं डाकुओंसे रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ, तुम क्षत्रिय हो, रक्षा करना तुम्हारा धर्म है, तुम्हें मेरी गायें छुड़ाकर लाकर देनी चाहिये। अर्जुनने कहा—बहुत ठीक है, लेकिन फिर सोचा मेरे गाण्डीव धनुष एवं तूणीर तो द्रौपदीके कमरेमें रखे हैं और द्रौपदीके पास आज युधिष्ठिरकी बारी है। यदि मैं वहाँ जाता हूँ तो मुझे प्रतिज्ञाके अनुसार बारह वर्षका वनवास भोगना पड़ेगा। नहीं

जाता हूँ तो इधर ब्राह्मण और गायोंका काम अधूरा रह जायगा। अर्जुनने बारह सालके वनवासकी परवाह न करके द्रौपदीके महलमें प्रवेश किया और अपना गाण्डीव धनुष व तूणीर निकालकर उन डाकुओंका पीछा किया। डाकू अर्जुनको देखकर गायें छोड़कर भाग गये, अर्जुनने गायें लाकर ब्राह्मणको सौंप दी। दूसरे दिन प्रातःकाल सभा हुई। द्रौपदीके महलमें जानेकी बात द्रौपदीको मालूम थी, पर उन्होंने युधिष्ठिरको बतलाया नहीं था। अर्जुन राजसभामें स्वयं खड़ा हो गया और महाराज युधिष्ठिरसे कहने लगा—मुझसे अपराध हो गया। युधिष्ठिरने पूछा—क्या अपराध है। अर्जुनने ब्राह्मण देवताकी गायोंकी सारी बात बतला दी। मेरे शस्त्र, गाण्डीव आदि आपके कमरेमें थे, आपके कमरेमें प्रवेश करके शस्त्र निकालकर गायोंको छुड़ाकर मैंने ब्राह्मण देवताको सौंप दिया। लेकिन नियममें बाधा पड़ गयी, इसलिये मैं दण्डका भागी हूँ। अपने पाँचों भाइयोंने मिलकर नियम बनाया था कि द्रौपदीके महलमें हर एक भाई एक वर्षतक रहेगा। इस बीच यदि बिना बारीके कोई दूसरा भाई उसके महलमें जायगा तो उसको बारह वर्षका वनवास भोगना पड़ेगा। देवर्षि नारदजीने हमलोगोंको इस प्रकारका आदेश दिया था। इस प्रकार नियम न बनानेसे सम्भवतः तुम पाँचों भाइयोंमें कभी झगड़ा हो जाय। आज तुम पाँच भाइयोंका परस्परमें जो प्रेम है, कहीं उसमें कलंक न लग जाय, इसलिये यह नियम बनाया गया था। अतः नियमानुसार मुझे बारह वर्षका वनवास होना चाहिये। युधिष्ठिरने उत्तर दिया—इस काममें तुम्हारा किसी प्रकारका व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था, तुमने तो गौ और ब्राह्मणका संकट-निवारण करनेके लिये ही ऐसा किया था, इसलिये मैं तुमको क्षमा करता हूँ। तुम

उस आपत्तिकालमें गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये गये थे, इसलिये पहले तो यह तुम्हारा अपराध ही नहीं माना जाना चाहिये। फिर भी यदि तुम अपना अपराध ही मानते हो तो मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ एवं राजा भी हूँ, इसलिये मैं तुमको क्षमा करता हूँ। तब अर्जुनने कहा—महाराज आपका कहना ठीक है, लेकिन यदि हमलोग ही इस प्रकारसे धर्मकी मर्यादामें छूटका आसरा लेने लगे तब और लोग भी धर्मसे फिसलने लगेंगे, इसलिये मैं तो बारह वर्षके लिये वनको जाऊँगा। आप इसमें किसी प्रकारकी रुकावट मत डालें। युधिष्ठिरने अर्जुनको हर प्रकारसे बहुत समझाया, लेकिन अर्जुनने अपने बड़े भाई धर्मराजकी भी आज्ञाका आदर नहीं किया, अपितु धर्मकी मर्यादाको रखकर बारह वर्षके लिये वनवास जाना ही ठीक समझा। पाँचों पाण्डवोंने तो जुएमें हारनेके बाद बारह वर्षका वनवास लिया था, लेकिन केवल अर्जुनने उससे पहले अपनी बीस-पचीस वर्षकी अवस्थामें यह बारह वर्षका और विशेष वनवास लिया था। धर्मकी मर्यादाका पालन करनेके कारण अर्जुनके लिये जो छूट थी, उस छूटको भी अर्जुनने स्वीकार नहीं किया। अच्छे पुरुष इस प्रकारसे धर्मकी छूटकी गुंजाइश पाकर अपने धर्मका त्याग करनेके लिये नाना प्रकारकी बहानेबाजियोंका सहारा नहीं ढूँढ़ा करते और न धर्मकी छूटको ही स्वीकार किया करते हैं। वस्तुतः यह बड़े महत्त्वकी बात है। आजकल हम धर्मकी मर्यादामें थोड़ी-सी भी छूटकी गुंजाइश पाकर अपने धर्मका त्याग करनेके लिये नाना प्रकारकी बहानेबाजी, अटकलबाजीका सहारा ढूँढ़ा करते हैं कि यह धर्म ही तो है। वस्तुतः धर्म क्या है? इस बातको हम समझते नहीं हैं। पहले साधु-महात्माओं एवं अच्छे महात्माओंका जिस प्रकारका व्यवहार हमने देखा था, वैसा

व्यवहार आज देखनेमें नहीं आता। हमारे चूरूमें एक बहुत अच्छे महात्मा हो गये हैं, उनका नाम बखतरनाथजी महाराज था। बहुत अच्छे महात्मा थे। मैंने उनके दर्शन किये हैं। मेरे पिताजीकी बखतरनाथजी महाराजमें विशेष भक्ति थी। मेरे पिताजीकी दादीजी जब मरने लगीं, उनका अन्तिम समय आया तबकी यह बात है। उस बातको आज पचास वर्षसे भी अधिक हो गये। यह मेरी आँखों देखी घटना हमारे घरमें जिस प्रकार हुई है, उसी रूपमें मैं आपको बतलाता हूँ—

पिताजीने श्रीबखतरनाथजी महाराजके पास जाकर कहा—महाराज दादीजीका अन्तकालका समय है, अन्तकालमें आपके दर्शन हो जायँ तो ठीक है। अन्तकालका क्या मालूम, इसलिये उनके मरनेके पहले ही आपके दर्शन हो जायँ तो बहुत ठीक हो। तब श्रीबखतरनाथजी महाराजने कहा—अच्छा, किसी समय मेरा उनसे मिलनेका विचार है। इस प्रकार जब दो-चार दिन और बीत गये और बखतरनाथजी महाराज उनसे मिलनेके लिये नहीं आये, तब पिताजीने उनसे फिर जाकर कहा कि महाराज अब उनके और अधिक दिन नहीं निकलेंगे। उनका शरीर एक-दो दिनके भीतर ही समाप्त होनेवाला है। पिताजीकी इस बातसे बखतरनाथजी महाराज हँस दिये और उनकी बातका कोई भी उत्तर नहीं दिया। फिर एक दिन अचानक ही बखतरनाथजी महाराज घरपर आ गये। उस समय मैं भी वहींपर उपस्थित था। बखतरनाथजी महाराजके आनेके कुछ ही मिनट बाद पिताजीने अपनी दादीसे परिचय करवाया कि महाराजजी आये हैं, दर्शन कर लीजिये। बादमें महाराजजीने साधारण कुछ बातें कहनी थीं, वह कह दीं, भजन, ध्यान करना चाहिये आदि-आदि। फिर वहाँ

थोड़ी ही देरके लिये बैठकर चले गये। तब पिताजीने मुझसे कहा कि अब दादीजीका शरीर नहीं बचेगा। फिर सम्भवतः दूसरे दिन ही दादीजीका शरीर शान्त हो गया। बखतरनाथजी महाराज महापुरुष थे। उन्होंने कह दिया था कि एक बार मिलनेके लिये आऊँगा, जबतक वे घरपर नहीं आयेंगे, तबतक उससे पहले तो दादीजीका शरीर शान्त नहीं हो सकता, क्योंकि महापुरुषोंने मिलनेका वचन दे दिया था। वे वचन पूरा कर चुके, दादीजीसे मिल चुके तो अब उनका शरीर बचनेका नहीं है।

बखतरनाथजी महाराजकी एक बात और बताता हूँ—चूरूमें श्रीविलासरायजी भुवालकाके पिता श्रीनन्दलालजी भुवालका थे। मैं और मेरे पिताजी दोनों ही उनके पास जाया करते थे। विलासरायजीके पैरोंमें कीड़ियाँ पड़ गयीं, जिसको कीड़ी नगराकी बीमारी कहा करते हैं। उस बीमारीका इलाज करवानेमें हजारों रुपये खर्च कर दिये, लेकिन लाभ नहीं हुआ। बीमारी बढ़ती गयी, अंतमें निश्चय किया गया कि पैरको कटवा देना चाहिये, अन्यथा बीमारी सारे शरीरमें फैल जायगी, जिससे मरना निश्चित है। इसके लिये कलकत्ता जानेका निश्चय किया गया। कलकत्ता जानेके पहले श्रीबखतरनाथजी महाराजसे मिलनेके लिये वे उनके यहाँ गये। उन्होंने पूछा—कलकत्ता किसलिये जाना चाहते हो, उन्होंने कीड़ीनगराका सारा हाल सुना दिया, इसलिये पैर कटवानेके लिये कलकत्ता जानेका विचार किया है। बखतरनाथजी महाराजने उत्तर दिया कि कीड़ियाँ तो बाजरेका आटा खाया करती हैं। इसलिये कीड़ी नगरापर बाजरेकी लुपड़ी, पाटिया बाँधना चाहिये। उन्होंने कलकत्ता जानेका प्रोग्राम कैन्सिल कर दिया और बखतरनाथजी महाराजके कथनानुसार बाजरेका

पाटिया बाँधना शुरू कर दिया। पाटिया बाँधनेसे सचमुच वे कीड़ियाँ बाहर निकलने लग गयीं। थोड़े दिनोंमें सब-की-सब कीड़ियाँ बाहर निकल गयीं। घाव भी सूखकर साफ हो गया। इस प्रकार और भी बहुत-सी आँखों देखी बातें हैं।

एक दिन मैं और रामवल्लभ सरावगी श्रीबखतरनाथजी महाराजके निवासस्थानपर उनका दर्शन करने गये। वे अपने निवासस्थानपर नहीं थे। हमलोग उनके पैरोंकी खोज करते-करते जंगलमें धोरोंकी ओर गये। लगभग आधा मील हम और गये, तब देखा वहाँ वे बैठे हुए हैं, भगवान्‌का भजन कर रहे हैं। हमलोग पास जाकर बैठ गये। बखतरनाथजी महाराजने देखा और पूछा—यहाँ किस प्रकारसे आ गये, क्या काम है? हमलोग दर्शन करने आपके स्थानपर गये थे, वहाँ नहीं मिलनेसे चरणोंके निशानसे देखते-देखते यहाँतक पहुँच गये। कुछ बातें हुईं, उसके बाद बखतरनाथजी महाराजने रामवल्लभसे कहा—यहाँ धोरेके नीचे एक बड़ा भारी कीड़ी नगरा है, इस जंगलमें इनको कौन अनाज देवे, इसलिये तुम इन कीड़ियोंके लिये अनाज डाल दिया करो, तुम्हारी कामना पूरी हो जायगी। तब मैंने पूछा—मैं भी अनाज डालता रहूँ, मेरी भी कामना पूरी हो जायगी क्या? तब उन्होंने कहा—तुम्हारी कामना तो बड़ी है। रामवल्लभकी कामना है छोटी। रामवल्लभकी सगाई नहीं हुई, यह सगाई करानेके उद्देश्यसे मेरे पास आता है। इसकी सगाई हो जायगी। तुम आत्माके कल्याणके लिये मेरे पास आते हो। तुम्हारी कामना बड़ी है। इसलिये तुमको नहीं कहता, तुम्हारा काम बन जायगा। इस प्रकार अन्य लोग भी महाराजके वचनोंकी प्रतीक्षा करते रहते थे कि महाराज कुछ कह दें तो वचन काममें

लाकर लाभ उठावें। इसमें हमारा अहोभाग्य है। इसमें अपना कल्याण समझते थे। उनके वचनोंका कितना अधिक महत्त्व था इस सम्बधमें एक घटना बताता हूँ—हमारे चूरू शहरमें पहले पंचोंका प्रचलन था, अब भी पंच हैं। घनश्यामदासजी मंत्री श्रीबखतरनाथजी महाराजके पास जाया करते थे। यह बात संवत् १९५९ की है। लोगोंने श्रीबखतरनाथजी महाराजसे कहा और सलाह दी कि महाराज आपके पास जो घनश्यामदास मंत्री आता है उसके पास चारेकी बागर* बहुत बड़ी है। घासके बिना गायें भूखी मर रही हैं। यदि आप उन्हें किसी प्रकार संकेत करके कह दें कि बागरका घास निकालकर गायोंको खिला दे तो महाराजने कहा—हमारा तो किसीको कहनेका स्वभाव नहीं है। लोगोंने विशेष जोर देकर कहा—महाराज गायोंका काम है, उपकारका काम है, आपके थोड़े-से संकेतसे काम बन सकता है। महाराजजीकी संकेत करनेकी इच्छा नहीं थी, फिर भी गायोंके हितके लिये जब घनश्यामदास मंत्री महाराजके पास आये तब उन्होंने उनसे पूछा—घनश्याम तुम्हारे पास बागर है क्या? उन्होंने कहा—हाँ महाराज! है। गायोंके लिये है, घासका बड़ा भारी बागर है। महाराजने कहा—वह गायोंके लिये खोलना चाहिये न। तब घनश्यामदासने जवाब दिया कि महाराज अभी उसको खोलनेका समय नहीं आया। महाराजने कहा—समय तो आ गया। अब तू खोल या मत खोल तुम्हारी इच्छा है। घनश्यामदासजीने उनकी बातकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और कोई उत्तर भी नहीं दिया, चुपचाप अपने घरको वापस लौट आये। बात यह थी कि गायें तो घास बिना मर रही थीं, जब वे मर जायँगी,

* दस हजार मन घासकी ढेरीको बागर कहते हैं।

तब घासका क्या उपयोग होगा। बखतरनाथजी महाराजका आदेश जो और लोग सुन रहे थे, वे घनश्यामदासजीके घर गये, उनसे कहा—आज आपने बहुत बड़ी गलती कर दी। घासकी बागर तो आपको खोलनी ही थी। ऐसा मौका कब मिलेगा कि महाराजकी आज्ञा मिलनेपर बागर खोली जाती। यह तो बहुत बड़ा अपराध हो गया, बड़ी भारी गलती हो गयी। जब यह बात घनश्यामदासजीके जँच गयी कि यह तो बहुत बड़ा भारी पाप हो गया। वे फिर एक दिन बाद महाराजके पास गये और उनसे कहा—महाराज मैंने बड़ा भारी पाप किया, परसों आप बागर खोलनेके लिये कहते थे, आपके आदेशके अनुसार आज खोल दूँ, तब महाराजने कहा—अब भैया तेरी इच्छा तुम जानो, अब मैं कुछ नहीं कहता, इस प्रकार उन्होंने रुखाईसे कहा। दो-चार दिन बाद ही घनश्यामदासजीका शरीर शान्त हो गया। बखतरनाथजी महाराजके कहनेका अर्थ लोगोंने यह निकाला कि गायोंका समय तो पहले ही आ चुका था, अब घनश्याम तेरा भी समय आ गया है।

बखतरनाथजी महाराज किसीको पुण्य-दानादिके लिये नहीं कहा करते थे। बीकानेरके महाराजा साहब एवं रानी साहिबा बखतरनाथजी महाराजका विशेष सत्कार किया करते थे। हमारे मामाजी बखतरनाथजी महाराजके पास ही बैठे थे। बीकानेरके महाराजा साहबका दीवान महाराजजीके पास आया, उसने कहा—रानी साहिबा आपके दर्शन करना चाहती हैं। आपको दर्शन देनेके लिये उनके निवास स्थानपर चलना है। महाराजने कहा—हम साधु लोग कहाँ किसके पास जायँ। दीवान साहब विशेष आग्रह करने लगे आपको चलना पड़ेगा। महाराजजीके पास

बैठने वाले अन्य लोगोंने कहा—विशेष आग्रह है तो चले जाना चाहिये। लेकिन महाराजजी आप एक काम करें, बड़ा परोपकार हो सकता है। आपसे जब महारानी साहब कहें कोई सेवा फरमावें, तब आप उनसे कहना यह जो बीड़ है उसका गायोंके नामसे पट्टा करवा दिया जाय तो गायोंके लिये सदाके लिये बड़ा सुख हो जायगा। महाराजजीने स्वीकारात्मक वचन दे दिया कि ठीक है। तब दीवान साहब महारानी साहबकी टमटम गाड़ीमें खूब सुन्दर मखमलका गद्दा बिछाकर महाराजजीको लेने आये। महाराजजी चले गये। दीवान साहबने मन-ही-मन सोचा महाराजजी आज राजावाली सवारीमें आये हैं, विशेष सुख मिला होगा। फिर पूछ भी लिया—आप मखमली गद्देपर बैठकर आये, किस प्रकार आराम प्रतीत हुआ। महाराजने उत्तर दिया—आज तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि किसीने मुझे कुंभीपाक नरकमें बैठा दिया हो। हमारे यह बात समझमें भी नहीं आती। हमलोगोंकी इत्र, फुलेल, लवेण्डरमें सुख-बुद्धि है। विरक्तको ये वस्तुएँ पेशाबके समान लगती हैं। दीवान साहब बात सुनकर चुप हो गये। महारानीने महाराजजीको भोजन कराया, उचित खातिरदारी की। महाराजजी भोजन पाकर लौटने लगे, तब महारानी साहबने महाराजजीसे पूछा कोई हुकम फरमायें। महाराजजीने कहा—कुछ नहीं, कोई बात नहीं है। फिर रानी साहबने विशेष आग्रह किया तब महाराजजीने कहा—रतनगढ़में जो बीड़ है, उस बीड़का पट्टा गायोंके नाम करवा दीजिये, गायोंको बड़ा कष्ट हो रहा है। उस बीड़का पट्टा गायोंके नाम हो जानेपर अन्य लोग उसमें अपनी रेवड़ नहीं चरा सकेंगे, न लकड़ियाँ ही काटकर ले जा सकेंगे,

इससे गायोंको बड़ा भारी आराम हो जायगा। इसलिये गायोंकी रक्षाके लिये पक्का इन्तजाम हो जाना चाहिये। उस समय महाराज साहब भी वहींपर थे, उन्होंने कहा—अच्छा महाराजजी यह हो जायगा। महाराज साहबने कहा—और हुकम फरमायें। महाराजने कहा—कुछ नहीं चाहिये। महाराज साहबने बीड़का पट्टा गायोंके नाम करवाकर भेज दिया। महाराजजी वापस अपने निवास-स्थानपर लौट आये। लोगोंने कुंभीपाक नरक वाली बातकी चर्चा की तथा कहा—राजाका अन्न खाना बुरा होता है आप ऐसा मानते हैं तो फिर सवारीमें बैठकर वहाँ क्यों गये और राजाका अन्न क्यों खाया। महाराजजीने उत्तर दिया—मैंने इन गायोंकी रक्षाके लिये यह सब किया। यह आपको बखतरनाथजी महाराजकी बात बतलायी। बहुत-सी बातें मेरी आँखों देखी हुईं, कुछ सुनी हुई हैं। पहलेके समयमें बोलनेमें कितनी सभ्यता, शिष्टाचार और सदाचार था।

बखतरनाथजी महाराज बहुत दिनोंतक जीवित रहे। यह तो आपको थोड़ी बातें बतलायी हैं, और भी बहुत-सी बातें हैं। बखतरनाथजी महाराजके सम्प्रदायमें बहुत उच्चकोटिके विरक्त महापुरुष हो गये हैं, उन्हींमें मंगलनाथजी महाराज भी थे। वे भी बहुत विरक्त महापुरुष थे, शेषमें दो ही रह गये। बखतरनाथजी महाराज एवं धर्मनाथजी महाराज। श्रीधर्मनाथजी महाराज बड़े सच्चे एवं तेजस्वी पुरुष थे। क्षत्रिय जातिके थे। वे अनीतिको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। श्रीबखतरनाथजी महाराजमें ज्यादा साधुता, दयालुता, विनयका विशेष व्यवहार था। एक समय एक पंडित बखतरनाथजीके पास जाकर बड़ी उद्दण्डताके साथ बैठ

गया, यह अनीतिकी बात देखकर धर्मनाथजी बर्दाश्त नहीं कर सके और कहा—अरे पंडित आज तो तू महाराजके सम्मुख इस प्रकार बैठ गया, भविष्यमें इस प्रकारसे बैठा तो वह डंडा देखता है, इससे तेरे पैर तोड़ डालूँगा। उस पण्डितने महाराजसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी।

एक समयकी बात है। एक सज्जन आसामसे इरंडी श्रीमहाराजजीको भेंट चढ़ानेके लिये लाया और महाराजजीके सामने रख दी। महाराजजीने कहा—हमलोगोंको साधारण कपड़ोंकी आवश्यकता है, कीमती चीजोंकी साधुको क्या आवश्यकता है। उस सज्जनने कहा—आपको देनेका संकल्प करके आपके निमित्तसे ही यह इरंडी लाया हूँ, इसलिये इरंडी आपको लेनी ही पड़ेगी। महाराजजीने लेनेसे अस्वीकार किया, बहुत मना किया, लेकिन वे सज्जन इरंडीको छोड़कर चले गये। महाराजजीने देखा यह चीज साधुओंके कामकी नहीं है। उनके संतोषके लिये स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन एक विद्वान् ब्राह्मण महाराजजीके पास आया, उस इरंडीको बार-बार देखने लगा तथा कहा—महाराजजी इरंडी बड़ी अच्छी है, आप कहाँसे लाये। महाराजजीने कहा—अमुक सज्जन गोहाटीसे लाया था, यहाँ छोड़कर चला गया। उसने कहा इरंडी बहुत बढ़िया है। विद्वान् ब्राह्मण घर जाने लगा तब महाराजजीने वह इरंडी उनको दे दी। आप ले जाइये। उसने कहा—यह तो आपके लिये दी है। महाराजजीने कहा—बढ़िया चीज साधुओंके कामकी नहीं होती। यह विद्वानों, पंडितोंके कामकी है। आपको ले जानी पड़ेगी। उसने कहा—मैं ले जाऊँगा तो महाजनको दुःख होगा। महाराजजीने कहा—महाजनसे तो ले ली, तुम मत कहना। हम चाहे जैसे करनेमें

स्वतन्त्र हैं। इस प्रकार जबरदस्ती करके उनको दे दी। किसी वस्तुमें किसीका मन चला गया, वह उसके द्वारा उच्छिष्ट हो गयी, वह अपने कामकी नहीं रही। महाराजजीने देखा इसको प्रिय है, इसलिये अपने काममें न लेकर उनको दे दी। इस प्रकार बखतरनाथजी महाराज त्याग, वैराग्य भाववाले एक उच्चकोटिके महापुरुष थे। सामनेवाली झाड़ियाँ दिखलायी देती हैं, इन झाड़ियोंमें हमने बहुत-से उच्चकोटिके महापुरुषोंके दर्शन किये हैं। एक स्वयंज्योतिजी महाराज रहते थे। वे भी विदा हो गये, अब थोड़े साधु-महात्मा झाड़ियोंमें हैं। उनको पहचानना बड़ा कठिन है। साधु पुरुषोंकी संख्या आजकल बहुत कम है, कोई-कोई बिरला ही होता है।

प्रतिकूलतामें प्रसन्नतासे भगवत्प्राप्ति

वास्तवमें मनकी प्रतिकूलतामें ही सब दोषोंकी सृष्टि होती है। मनकी प्रतिकूलतामें दोषोंका कोई ठिकाना नहीं रहता। मनकी प्रतिकूलतामें सर्वप्रथम क्रोधकी सृष्टि होती है, लेकिन मनकी अनुकूलतामें कभी भी क्रोध नहीं होता। मनकी प्रतिकूलतामें ही द्वेष-बुद्धि होती है। मनकी अनुकूलतामें किसीको भी द्वेष नहीं होता। उसमें तो प्रसन्नता होती है। मनकी प्रतिकूलतामें केवल द्वेष ही नहीं उससे और भी आगे वैर भी बँध सकता है। इसके अतिरिक्त मनकी प्रतिकूलतामें क्रोध भी होता है और दुःख भी होता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं—१. अविद्या २. अस्मिता ३. राग ४. द्वेष और ५. अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश हैं। इतना ही नहीं प्रतिकूलतामें आपसमें प्रतिद्वंद्विता भी होती है। जिसके कारण अमर्ष पैदा होता है, इसलिये पूछा जाता है कि प्रतिकूलतामें भी अनुकूलता किस प्रकार समझी जाय? यही विशिष्ट बात है। आप यदि क्रोध करें तो मुझमें ऐसी कोई करामात नहीं है कि मैं जबरदस्ती आपकी प्रतिकूलताको अनुकूलता बना दूँ। भगवान् तो सब कुछ कर सकते हैं, पर जब आप भगवान्‌को मानें तब न। ध्यान देना चाहिये कि जो भी कुछ मनके प्रतिकूल व्यवधान होता है, वह सब भगवान्‌की इच्छासे ही होता है। भगवान्‌की आज्ञाके बिना कुछ नहीं होता। किसी भी वस्तुकी प्राप्ति, व्यवस्था या किसी भी कामका बनना या बिगड़ना यह सब कुछ भगवान्‌की आज्ञा और भगवान्‌की इच्छासे

प्रवचन—दिनांक २१ अप्रैल, १९५०

ही होता है। भगवान् जो भी कुछ करते हैं वे सब कुछ हमारे हित—मंगल यानी कल्याणके लिये ही करते हैं। इस प्रकारसे समझकर यदि आप विश्वास कर लें तो फिर आपके मनकी प्रतिकूलता ठहर ही नहीं सकती। इतना ही नहीं, ऐसा समझ लेनेके बाद साधक सब प्रकारके दोषोंसे रहित होकर भगवान्‌की प्राप्ति कर सकता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

(गीता ४। २२)

अभिप्राय यह है कि ईश्वरेच्छासे जो भी कुछ आकर प्राप्त हो जाय उसीमें प्रसन्न, संतुष्ट रहे और '**द्वन्द्वातीतः**' द्वन्द्व क्या है? हर्ष-शोक, राग-द्वेष और सुख-दुःख—ये द्वन्द्व मिट जायँ तो सब मामला समाप्त हो जाता है। जो पुरुष इस प्रकारके दुःखों और सुखों आदिको प्राप्त होनेको भगवान्‌की इच्छा समझकर उसमें आनन्दका अनुभव करता है, वह पुरुष सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे छूटकर द्वन्द्वातीत बन जाता है। जो भी कुछ सुख-दुःखकी प्राप्ति हो जाय, उसमें भगवान्‌का विधान समझकर सन्तोष करना चाहिये। ऐसा होनेपर मनुष्य द्वन्द्वातीत बनता है। '**विमत्सरः**' मत्सरताका अभाव भी मनुष्यमें तभी होता है जब मनुष्य सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंकी प्राप्तिमें आनन्द मानता है। उसके लिये फिर मत्सरता यानी ईर्ष्याकी गुंजाइश नहीं रहती। जो मनुष्य कामकी सिद्धि एवं असिद्धि दोनोंमें समान भावसे रहता है। वह जो कुछ भी करता है उससे वह पापका भागी नहीं होता। इन दोनोंमें जिसका समभाव नहीं होता, वह पापोंसे लिपायमान होता है। इसलिये पापोंसे लिपायमान नहीं होनेका यह उपाय बतलाया गया कि जो

भी कुछ हो रहा है वह सब कुछ भगवान्‌की इच्छासे ही हो रहा है। सभी कर्म भगवान्‌की आज्ञानुसार करने चाहिये। दैवेच्छा, अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ घटना घटे, उन सबको ईश्वरकी इच्छा मात्र मान लेना चाहिये। इस प्रकार मान लेनेपर प्रतिकूलतामें मनकी अनुकूलता बन जाती है। जिस प्रकार हमलोगोंको ऐसा मालूम पड़ता है कि पंचायतमें हमारे घरवालोंने इस प्रकारका फैसला स्वीकार कर लिया है अथवा हमारे किसी हितैषी या प्रेमीने हमारी ओरसे इस प्रकारके फैसलेको स्वीकार कर लिया है तो हमको यह सुनकर सन्तोष हो जाता है। क्योंकि हमारा ऐसा विश्वास है कि ये लोग जो भी कुछ करेंगे हमारे हितके लिये ही प्रयत्न करेंगे। इसी प्रकार हमलोगोंको यह विश्वास कर लेना चाहिये कि संसारमें भगवान्‌के समान हमारा कोई हितैषी या प्रिय नहीं है। उनके समान अन्य कोई भी सुहृद् और दयालु नहीं है। इसलिये उनके हाथोंसे जो भी काम बनेगा, वह हमारे मंगल—कल्याणके लिये ही बनेगा—ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये। भगवान् शंकर पार्वतीसे कहते हैं—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

भाव यह है कि श्रीरामके समान हमारा अन्य कोई भी हितैषी नहीं है। गुरुजी भी नहीं हैं और पिता एवं माता भी नहीं हैं। एक नम्बरमें गुरु, फिर माता-पिता एवं भाई-बन्धु—इन सबका ही बहिष्कार किया गया, क्योंकि इनमेंसे कोई भी रामके समान हितैषी नहीं है। इसलिये ऐसा मान लेना चाहिये कि जो भी कुछ हो रहा है वह सब भगवान्‌की इच्छासे हो रहा है। लेकिन हमलोग जो अपनी इच्छासे कर्म करते हैं, उनमें भगवान्‌की इच्छा नहीं होती। जिस प्रकार हमलोग चोरी, झूठ, कपट, व्यभिचार, हिंसा

आदि पापकर्म करते हैं, ये सब हमलोग अपने स्वभावसे करते हैं। स्वभावके दोषके कारण करते हैं। इसमें भगवान्‌की किसी प्रकारकी इच्छा नहीं होती। यदि आप ऐसा कहें कि हम अपनी इच्छासे जो कुछ करते हैं उसमें किसी प्रकारका दोष अपराध नहीं होता। यदि ऐसी बात होती तो फिर आपको दण्ड क्यों दिया जाता। आपको अपने पाप कर्मोंका दण्ड भोगना पड़ता है। इसलिये जो भी कुछ हमारे मनके प्रतिकूल होगा, उसको हमें स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। आप इसको रोक ही नहीं सकते। वह तो होकर ही रहेगा। वह अवश्य ही होनेवाला है, लेकिन उनको जो मनुष्य दुःखपूर्वक मानता है, उससे भगवान् दूर रहते हैं और जो उसको भगवान्‌की आज्ञा, उनका विधान मानकर सुखपूर्वक सहन करके प्रसन्नताका अनुभव करता है, उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। आपके मनके प्रतिकूल जो भी कुछ कार्यवाही होगी, वह तो भोगनी ही पड़ेगी। आपके मनके प्रतिकूल जो कुछ कार्यवाही होगी उसका आपको पता ही क्या लगेगा कि वह बात होगी।

जैसे मान लीजिये कि आप राहमें चल रहे हैं, किसीने आपको गाली दी, आप उस समय क्या करेंगे। आप सम्भवतः कहेंगे कि हम उसके दो जूते या दो लाठी मारेंगे। लेकिन समझिये कि आपको किसीने गाली दी या जूतोंसे मारा, आप उसे सहन करके चुप हो जाते हैं तो फिर मामला वहीं पर समाप्त हो जाता है। लेकिन आप उसको दोकी जगह चार गालियाँ देते हैं, वह भी आपको चारकी जगह आठ गालियाँ दे सकता है। फिर आप उसको गालियाँ देंगे और वह आपको और गालियाँ देता रहेगा। इस प्रकार उसको भगवान्‌का विधान नहीं माननेके कारण एक तो आपने सामने वालेको अपराधी बनाया और आप स्वयं भी

अपराधी बने। उसने गाली दी तब दोकी जगह बदलेमें आपने चार गाली दी तो आपने अपने आपको अपराधी बनाया और आपके गाली देनेपर उसको और भी विशेष गालियाँ देनी पड़ीं, इस प्रकार आपने उसको भी अपराधी बनाया। अब आप ही बतलाइये कि गाली देनेका काम आपने अच्छा समझा था या बुरा समझा था। यदि आपने गाली देना बुरा काम समझा होता तो फिर आपको बुरा काम करना ही नहीं चाहिये था। जिसको आप समझते हैं कि यह काम बुरा है उसका त्याग ही करना चाहिये। जिस प्रकार किसी भी व्यक्तिने आपका अनिष्ट किया, यदि आप उस समय सहन कर लेते हैं तो वह बहुत ठीक है। क्योंकि आपको उस समय ऐसा मान लेना चाहिये कि हमने कोई बुरा काम किया था, यह उसीका परिणाम है। यदि आप इस अनिष्टको सहन नहीं करके बदलेमें उसका अनिष्ट करना चाहेंगे तो फिर हमको इसका बदला अनिष्टके रूपमें आगे भुगतना पड़ेगा। इस प्रकार एक अनिष्टको सहन न कर सकनेके कारण आपके अनेक अनिष्टोंकी वृद्धि होगी और उनका दण्ड आपको भुगतना पड़ेगा। इस प्रकार एक अनिष्टको सहन न कर सकनेके कारण बहुत बड़ी भारी आपत्ति हो जाती है, इसलिये आपके मनके प्रतिकूल जो भी कुछ होता है उसको भगवान्‌की इच्छा या अपना प्रारब्ध समझकर उसमें सन्तोष कर लेना चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं मानेंगे तो आप अपना दुःख और बढ़ा सकते हैं, लेकिन इससे किसी प्रकारकी कार्यसिद्धि नहीं हो सकती। जिस प्रकार आपके मनके प्रतिकूल कोई काम हुआ, मान लीजिये कि आपका लड़का मर गया, आप उसके वियोगमें चाहे जितना रोते ही रहिये, लेकिन यह तो मानी हुई बात है कि आपका वह लड़का कभी वापस आनेका नहीं है। इसलिये

आपको इसी प्रकार रोकर अपनी इज्जत भी क्यों खराब करनी चाहिये। भक्त नरसी मेहताके पुत्रकी मृत्यु हो गयी, तब भक्त नरसी खूब नाचने एवं गाने लग गये एवं उसमें भगवान्‌का हाथ समझकर खूब प्रसन्न एवं मुग्ध होने लग गये। अपनी पुत्रवधूको भी इस प्रकार समझाने लगे कि लड़का तो भगवान्‌के पास चला गया इसलिये खूब आनन्द मनाना चाहिये। हमारा कोई भी आदमी या चीजें भगवान्‌के पास चली जाती हैं तो हमलोग भगवान्‌से इस प्रकारसे प्रार्थना कर सकते हैं कि भगवान् आप इसकी आत्माको शान्ति प्रदान करें। भगवान् तो उसकी आत्माको आपके किसी प्रकारकी प्रार्थना न करनेपर भी शान्ति प्रदान करेंगे। लेकिन आप अपनी आत्माके सन्तोषके लिये इस प्रकार भगवान्‌से प्रार्थना कर सकते हैं।

कोई भी काम जो आपके मनके प्रतिकूल होता है, उसमें दो ही हेतु होते हैं। आप स्वयं कभी भी अपने मनके प्रतिकूल कार्यवाही नहीं कर सकते। बाढ़ आना, भूकम्प होना, बिजली गिरकर मृत्यु हो जाना आदि इस प्रकारके सभी मनके विपरीत कार्य दैवेच्छाके कारणसे ही होते हैं। इसी प्रकार दूसरोंकी इच्छासे भी आपकी हानि हो सकती है, यह समझना चाहिये। वस्तुतः हमारे मनके प्रतिकूल जो भी कुछ होना है वह तो होकर ही रहेगा। वह अवश्यम्भावी है। वह अवश्यभावी अनिष्ट वस्तु क्या है? हमारे पापोंका फल है। ऐसा समझकर पापोंका फल भोगनेमें प्रसन्नचित्त रहना चाहिये। जहाँ मनकी प्रसन्नता रहेगी, वहाँ मनकी प्रतिकूलता नहीं रह सकती।

पहली बात तो यह है कि जो भी कुछ मनके विपरीत होता है उसको अपने पूर्वजन्मके पापोंका परिणाम समझना चाहिये।

इससे बढ़कर भी यह भाव है कि जहाँपर कोई भी मनके विपरीत कार्य होता है, उसमें ऐसा समझना चाहिये कि ऐसी भगवान्‌की इच्छा है, इसमें भगवान्‌का हाथ है। भगवान्‌की आज्ञाके बिना कोई भी काम नहीं हो सकता, इसलिये उसको भगवान्‌की आज्ञा मानकर खूब प्रसन्न होना चाहिये। इससे भी और ऊँचा भाव यह है कि अपने मनके विपरीत जो भी कार्य होता है उसको भगवान्‌का पुरस्कार ही समझना चाहिये और उस पुरस्कारमें भगवान्‌की दयाका दर्शन करना चाहिये। भगवान् सब कुछ हमारे मंगलके लिये ही करते हैं, यह किस प्रकार मान लिया जाय। मान लीजिये कि हमको हैजा या १०५ डिग्री बुखार हो गया अथवा पेट दुःखनेसे कष्ट हुआ, उसमें भगवान्‌की दयाका किस प्रकार अनुभव करना चाहिये? मनकी प्रतिकूल अवस्थामें दुःख तो आपको स्वाभाविक ही होने लगता है, क्योंकि आपका किसी प्रकारका अनिष्ट होनेपर ही आप रोते हैं। कुत्तेकी तरफ लाठी लेकर मारने दौड़ते हैं, लेकिन कुत्तेके लाठी पड़नेके पहले ही कुत्ता चिल्लाने लगता है, ऐसा क्यों? वह कुत्ता भी यह समझता है कि सबमें भगवान् हैं। यदि मैं रोऊँगा तो शायद मेरी रक्षा हो जायगी। भगवान्‌के अस्तित्वका विश्वास कुत्तेको भी है। अभी उसपर लाठी नहीं पड़ी है। लेकिन वह समझता है शायद रोनेसे भगवान्‌की दयासे छुटकारा मिल जायगा। इसलिये आपलोगोंको भगवान्‌की दयाकी ओर ध्यान देना चाहिये। चाहे जो भी बीमारी हैजा या प्लेग किसी प्रकारका भी कष्ट क्यों न हो, वह किसका परिणाम है? वह आपके पूर्व जन्मोंमें किये गये पापोंका परिणाम है। यह सब बीमारी आदि आपके पाप कर्मोंके फलस्वरूप आपके पास आये हैं। जब आप

उनको भोग लेते हैं, तब आपके पापोंकी शान्ति हो जाती है, और आप पापरूपी ऋणसे मुक्त हो जाते हैं। बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह जब शरशय्यापर लेटे थे, तब उन्होंने भगवान्‌की स्तुति गायी थी। कहा कि मैंने अपने जीवनमें जो भी कुछ पाप किये हैं वे सब बीमारीके रूपमें मुझे प्राप्त हो जायँ तो मैं उन सबको भोगकर इसी शरीरमें उऋण हो जाऊँ।

भीष्मपितामह मूर्ख तो थे ही नहीं, वे तो बुद्धिमानोंमें भी बुद्धिमान् थे। युधिष्ठिर-जैसे धर्मराजके अवतार भी भीष्मसे उपदेश लेने गये थे। जब पितामह भीष्म शरशय्यापर लेटे थे, तब भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण कर रहे थे। उधर भगवान् श्रीकृष्ण भी भीष्मपितामहका स्मरण कर रहे थे। उस समय प्रातःकाल ही धर्मराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके महलमें पहुँचे। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ध्यानमें मस्त थे। जब उनके नेत्र खुले तब युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे हाथ जोड़कर पूछा—महाराज! आप किसका ध्यान कर रहे थे। यदि यह रहस्यकी बात आप मुझको बतलाने योग्य समझें तो बतायें। भगवान् श्रीकृष्णने कहा— युधिष्ठिर! पितामह भीष्म इस समय शरशय्यापर मेरा ध्यान कर रहे हैं, इसलिये मैं पितामह भीष्मका ध्यान कर रहा हूँ। इस समय भीष्म शरशय्यापर पड़े हैं। मैं उनसे मिलनेकी इच्छासे ही उनके पास जा रहा हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा भी उनसे मिलनेकी हो तो मेरे साथ चल सकते हो। भीष्मके समान शास्त्रोंका ज्ञाता संसारमें कोई भी नहीं है। आज वह शास्त्ररूपी सूर्य छिपने जा रहा है। आज तुमलोगोंको उनसे जो भी कुछ पूछना हो पूछ लेना चाहिये। तब पाँचों पाण्डव पितामह भीष्मके पास उपदेश लेने गये। भगवान् श्रीकृष्णने पितामह भीष्मसे कहा कि पाँचों पाण्डव आपसे उपदेश लेनेके लिये आये हैं।

पितामह भीष्मने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—मेरे शरीरमें जगह-जगह बाण लगे हैं। उनसे मुझको बड़ी पीड़ा हो रही है। मुझको बोलनेमें बड़ा भारी कष्ट हो रहा है। सारे शरीरसे खून बह रहा है। इस अवस्थामें उपदेश किस प्रकार दिया जा सकता है। तब भगवान् श्रीकृष्णने भीष्म पितामहके शरीरका स्पर्श किया और भीष्मसे कहा कि अब भी शरीरमें पीड़ा है क्या? भीष्मने कहा—नहीं महाराज अब तो किसी प्रकारका कष्ट नहीं है। सब प्रकारकी पीड़ा तो अब मिट गयी। तब भगवान्‌ने उपदेश देनेके लिये भीष्म पितामहसे कहा, भीष्म पितामहने उत्तर दिया कि भगवन्! आप सर्वगुणसम्पन्न साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर हैं, मैं तो आपके मुखसे उपदेश सुनना चाहता हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है, लेकिन बात यह है कि मैं आपके मुँहसे उपदेशकी बात कहलाना चाहता हूँ। इसलिये आपको उपदेश देना चाहिये। पितामह भीष्मने कहा—जैसी आपकी आज्ञा। भीष्म पितामह अट्ठावन दिन शरशय्यापर पड़े रहे और पचास दिनोंतक पाण्डवोंको उपदेश दिया। अट्ठावन दिनोंके बाद जब उनका अन्त समय आया, तब भीष्म पितामहने प्रार्थना की कि मुझे रोग एवं कष्टकी प्राप्ति होनी चाहिये, ताकि मैं सब प्रकारसे पापोंके ऋणोंसे मुक्त हो जाऊँ। पितामह भीष्मका सारा शरीर युद्धमें बाणोंकी चोटसे बिंधकर छलनी हो गया था, घावोंकी मरहम पट्टी करनेके लिये वैद्य आये थे, परन्तु उन्होंने मरहम पट्टी नहीं करवायी। वैद्योंको पारिश्रमिक देकर विदा कर दिया। दुर्योधनसे कह दिया कि मैं अपनी चिकित्सा नहीं करवाना चाहता, क्योंकि उनको तो पापरूपी ऋणोंसे मुक्त होना था। उनका सिर नीचे लटक रहा था, उसके लिये तकियेकी आवश्यकता थी। उन्होंने तकियेके लिये कहा।

लोग दौड़कर रेशम, मलमलका तकिया लेकर आये। भीष्मपितामह तकिया देखकर हँसने लगे कि ये तकिये मेरे योग्य नहीं हैं। उन्होंने अर्जुनकी ओर लक्ष्य करके कहा—अर्जुन तुम जानते हो मेरे योग्य कौन-सा तकिया है, तुम मुझे तकिया दो। अर्जुनने दो बाण मस्तकपर मारे। मस्तकसे सिरको भेद करके वे तकिया बन गये और सिर ऊँचा हो गया। भीष्मने कहा—धन्य है! थोड़ी देर बाद भीष्मने कहा—प्यास लगी है, जलकी आवश्यकता है। दुर्योधनके सेवक सोने-चाँदीकी झारी लेकर आये, कहा—जल हाजिर है। भीष्मने कहा—यह मेरे योग्य नहीं है। अर्जुनसे कहा—तू मेरे योग्य जल दे। मरते समय कौन-सा जल दिया जाता है, उसकी व्यवस्था करनी चाहिये। अर्जुनने उसी समय पृथ्वीमें एक बाण मारा। पृथ्वीसे गंगाजीकी धारा प्रवाहित होने लगी। फव्वारेकी तरह जल उछलकर भीष्म पितामहके मुखमें गिरने लगा। गंगाजल पीकर भीष्म पितामह तृप्त हो गये। भीष्म पितामहने बतलाया कि मरते समय गंगाजल पीकर ही मरना चाहिये। अर्जुनके बाणसे निकली हुई गंगाजीकी धारा अभी भी बाणगंगा नामसे कुरुक्षेत्रमें है। गंगाजीका जल बढ़कर वहाँ एक सरोवर बन गया। पितामह भीष्म अपने कष्टकी चिकित्सा करवाना नहीं चाहते थे, वे तो भगवान्‌के सम्मुख माँग करते हैं कि और बीमारी भेजो ताकि मैं पापोंके ऋणसे मुक्त हो जाऊँ। इस प्रकारके कष्टोंसे प्रथम तो भगवान्‌के ऋणसे मुक्ति होती है। दूसरी बात बड़े-बड़े दुःखोंको भोगनेसे सहनशक्ति बढ़ती है। तीसरी बात कष्टमें भगवान्‌की स्मृति बराबर बनी रहती है। किसीने कहा है—

दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै दुख काहे को होय॥

कष्टमें जब मनुष्यको अपनी मृत्यु निकट दिखलायी पड़ती है, तब उसकी पापमें प्रवृत्ति नहीं होती। बुरे कर्मोंमें जो प्रवृत्ति होती है, वह पूर्वजन्मोंके पापोंका ही परिणाम है। उससे बचना चाहिये। कष्टमें जब भगवान्‌की स्मृति होती है तो उससे बेड़ा पार हो जाता है। कष्टकी प्राप्तिमें सभी प्रकारका हित है, इसलिये जब कभी किसी प्रकार कष्टकी प्राप्ति हो, उसको भगवान्‌का भेजा गया पुरस्कार वस्तुतः न भी समझा जा सके तो भी समझना चाहिये तथा मान लेना चाहिये कि यह भगवान्‌का विधान है। इसमें निश्चय ही गुप्त रूपसे भगवान्‌की दया भरी हुई है। कोई भाई पूछे कि लड़का मर जाय तो क्या समझना चाहिये। उसमें भी भगवान्‌की दयाका पुरस्कार समझना चाहिये। फिर पूछा—अपना लड़का मर गया दुःख होता है, उसमें दयाका पुरस्कार किस प्रकार समझ लिया जाय? मान लीजिये लड़का मर गया, आप उसका विशेष हित चाहते हैं तो भगवान्‌से उसकी आत्माके कल्याणके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। आपको अपना हित करनेके लिये भगवान्‌ने भजन, ध्यानका मौका दिया है। भगवान्‌ने आपको चेतावनी दी है, जब तेरा लड़का मर गया यानी तुमसे छोटी आयुवालेका शरीर चला गया, तब तुम्हारी आयुके कितने दिन बाकी हैं। तुम्हारी तो बारी लड़केके पहले आ जानी चाहिये थी, नहीं आयी तो आनेवाली तो है ही, इसलिये ऐसा मानना चाहिये कि लड़का मर गया तो झंझट मिट गया, यदि किसीके पुत्र ही नहीं हो तो बहुत ठीक है। मैं तो अपने ऊपर भगवान्‌की बड़ी भारी दया मानता हूँ जो मुझे पुत्र नहीं हुआ। क्योंकि पुत्रका दुःख तो मुझे कभी होनेका ही नहीं है, क्योंकि पुत्र हुआ ही नहीं, तब उसकी मरनेकी बात

कैसे, दुःख करना कैसा। मुझपर यह भगवान्‌की विशेष दया हुई। भीष्मपितामहके पुत्र नहीं हुआ तो क्या हुआ, भीष्मकी तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने प्रशंसा की है। पुत्र मर जाय तो समझना चाहिये कि यह भगवान्‌की चीज थी, वापस भगवान्‌के पास चली गयी। बड़े आनन्दकी बात है। ऐसा समझना चाहिये। जिस प्रकार आज कोई भाई हमारे पास आया और बोला कि अपनी तिजोरीमें हमारे रुपये तथा गहनेका डिब्बा रख लीजिये। हमने कहा—आप यहाँपर जोखिमकी चीज क्यों लाये, जबकि हमने कल्याणमें सूचना निकलवा दी थी कि जोखिम अपने साथ नहीं लानी चाहिये। बोले—हम तो ले आये। हमने उनका सामान रख लिया, फिर पाँच दिन बाद आये, कहने लगे—हम वापस जा रहे हैं। हमारे रुपये तथा गहनेका डिब्बा वापस दे दीजिये। हमने कहा—ले जाइये अच्छा रहा, अपनी जिम्मेदारीसे आफतकी चीज चली गयी। यदि नीयत खराब करके उनको नहीं देना चाहते, अपने पास रखना चाहते हैं तो वह हमारी बेईमानी मानी जाती है। इसी प्रकारसे तथ्यकी बात समझनी चाहिये कि आपका एवं आपके स्त्री, पुत्र, भाई आदिका जो शरीर है, वह भगवान्‌की धरोहर है। भगवान्‌ने यह अपनी धरोहर आपके पास रखी थी। अब भगवान् उसको वापस लेना चाहते हैं, तब आपको उसके लिये क्यों रोना चाहिये, बल्कि हमलोगोंको तो उसमें आनन्द मानना चाहिये कि हमने भगवान्‌की धरोहर वापस उनको सँभला दी। इस प्रकार मानकर खूब प्रसन्न होना चाहिये और ऐसा समझना चाहिये कि अब भगवान्‌ने हमको अपनी सेवाका मौका दिया है। अबतक तो आप अपने पुत्रकी सेवा करते थे, अब आपको उससे छुटकारा मिल गया। अब आप भगवान्‌की

सेवा कर सकेंगे। आप विचार कीजिये कि भगवान्‌की सेवा करना बड़ी चीज है या अपने पुत्रकी सेवा बड़ी चीज है। यही उत्तर मिलता कि भगवान्‌की सेवा ही बड़ी चीज है। बल्कि पुत्रकी सेवा करनेमें तो आदिसे लेकर अन्ततक बड़ी भारी आपत्तिका सामना करना पड़ता है। पुत्र क्या चीज है? हाड़-मांसका पुतला ही तो है। माताको पुत्रके कारण विशेष कष्टोंका सामना करना पड़ता है। गर्भमें आता है तब कष्ट होता है। डॉक्टरोंकी शरण जाती है, दवाओंका सेवन करवाते हैं, पुत्र पैदा होता है, तब कष्टका सामना करना पड़ता है। किसीकी प्रसवकालमें मृत्यु भी हो जाती है। पुत्र पैदा होता है तब कष्ट होता है, वह टट्टी, पेशाब करता ही रहता है, मानो इन सभी वस्तुओंकी खान ही भरी हो। उसमेंसे टट्टी, पेशाब कभी समाप्त होते ही नहीं। वे तो तभी समाप्त होते हैं जब वह मर जाता है। बच्चा कफ, खँखार, बलगम आदि गंदी-गंदी चीजोंको ही फेंकता रहता है। बच्चा बीमार पड़ जाता है तब चिन्ता करते हैं। वैद्य, डॉक्टरोंको बुलाया, इलाज नहीं हो पाता और मर जाता है, तब उसको बैठकर रोया करते हैं। जब पुत्र बड़ा हो गया, तब आप मनमें सुखके महल बनाया करते हैं कि अब पुत्रका विवाह करना होगा, फिर बहू घरपर आयेगी। वह मुझको सुखसे भोजन बनाकर खिलायेगी, इत्यादि। लेकिन उनको इस बातका क्या पता कि जब बहू घरपर आ जायेगी, तब पुत्र अपनी बहूकी ही बात सुनेगा, तुम्हारी बात फिर वह नहीं सुनेगा। गोस्वामीजीने कहा भी है—

ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें॥

जब स्त्री उसके पीछे लग जाती है, तब अपने घरके सब कुटुम्बीगण उसको फिर शत्रुके समान दिखलायी पड़ने लगते हैं।

फिर भी आप इन कलयुगी बहुओंसे अपने लिये सुखकी आशा करते हैं। यह बड़ी भारी मूर्खताकी बात है। फिर पुत्र आपसे कहने लगेगा—घरका मालिक मैं हूँ, तू कौन है? फिर भी माँ ज्यादा हूँ, हाँ करती है, तब उसको खर्चके लिये चालीस-पचास रुपये मासिक बाँध देते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। इस प्रकारके दृष्टान्त हम बराबर अपनी आँखोंसे देखते हैं और लोगोंसे सुननेमें आते हैं।

एक स्त्री थी। वह अपनी पुत्रीको अपनी बहूसे छिपाकर चीजें दिया करती थी। कभी दाल, कभी चावल, कभी घी, गेहूँ आदि देती थी। एक दिन पुत्रवधूने उसको देते देख लिया। अपनी साससे पूछा—आज बाईजीको क्या दिया, तब सासने उत्तर दिया—क्यों, मेरे जँची वह दिया, तुम्हें क्या मतलब है। मेरी बेटी है। मैं घरकी मालकिन हूँ, चाहे जो दूँ। तब बहूने कहा—इस प्रकार चोरी करनेसे काम नहीं चलेगा। जो भी चीज बाईको देनी हो, सामने दिया करें। छिपाकर देना नहीं चलेगा। सासने कहा—मैं तो दूँगी। इस प्रकार सास-बहूकी लड़ाई हो गयी। शामको पुत्र घर आया, पता लगनेपर माँ दौड़कर दरवाजेपर गयी। पुत्रसे कहने लगी—तुम्हारी बहूने आज मुझको अमुक-अमुक बात कही। तब उसने घरमें जाकर अपनी स्त्रीसे पूछा—क्या बात है। बहूने जवाब दिया—माँको जब मौका लगता है, तब घरकी चीज उठाकर बाईजीको दे देती हैं। जो लेना-देना हो वह हिसाबसे ही होना चाहिये न। पूछा—और क्या बात है? स्त्रीने कहा इसीसे लड़ाई हो गयी। पुत्रने पूछा—रसोई आज क्यों नहीं बनायी गयी। उत्तर दिया—घरमें लड़ाई हो रही है तब रसोई कौन बनाता। अब पुत्र माँको कहता है कि माँ अब घरमें लेन-देन सब बहू ही करेगी।

माँ तू अपनी रसोई अलग बना लिया कर, तुझे बीस रुपये महीना खर्चके लिये मिल जाया करेगा। अब माँ सिर पकड़कर रोती है, कहती है कि नालायक मैं तुमको गोद किसलिये लायी थी, इसीलिये लायी थी क्या? मैंने तुमको किसलिये पाला था। पुत्र कहता है—दुनियामें लोग गोद लेते हैं उसी प्रकार तूने मुझको गोद लिया। माँ कहती है—मैं घरकी मालकिन हूँ। लड़का जवाब देता है—माँ कहने मात्रकी तो आपको घरकी मालकिन मानता हूँ। जब मैं गोद आ गया तब घरका मालिक मैं ही हूँ, बस, इतनी ही बात है। दोनों समय खानेको मिल जायगा, नहीं तो अपना अलग चूल्हा बनाकर खाओ, पकाओ। आजकल माताएँ अपनी इस प्रकारकी दुर्दशाएँ देख रही हैं। फिर भी वे गोद लेना नहीं छोड़तीं। पुत्र गोद लेना रिसीवर बैठाना है। यदि अपने धनपर रिसीवर बैठाना हो तो आप लड़का गोद ले सकते हैं। मारवाड़में एक कहावत है कि ***'लड़का न जायेड़ा भला न आयेड़ा भला'।*** जायेड़ा अर्थात् जो पुत्र माताकी कोखसे पैदा होता है न वही भला है और न आयेड़ा अर्थात् गोद लिया लड़का भी भला नहीं होता है।

इसलिये आपलोगोंको भगवान्‌से यही प्रार्थना करनी चाहिये कि प्रभो यदि आपकी मुझपर विशेष दया है तो आप मुझको पुत्र मत देना। यदि आप भजन, ध्यान एवं साधन करके अपनी आत्माका कल्याण करना चाहते हैं तो आपको पुत्रके जन्मनेका नाम भी नहीं लेना चाहिये। भगवान्‌का नाम लेना चाहिये, ताकि आपका बेड़ा पार लग जाय। यह लड़केकी आफत बाँधना तो एक प्रकारसे गलेमें पत्थर बाँधकर नदीमें डूब मरनेके बराबर है। फिर आपलोगोंकी इच्छा है चाहे जैसा करें। यहाँपर सभी लोग

उपस्थित हैं। यह गोद लेनेवाली बातें किसी भी एक भाईको लक्ष्य करके मैं नहीं कह रहा हूँ। इसलिये किसीको भी नाराज नहीं होना चाहिये। मेरा तो आप माताओं एवं बहनोंसे विशेष रूपसे कहना है कि यदि आप लड़का गोद लेंगी तो आपकी बड़ी दुर्दशा हो सकती है। फिर भी आपके जैसी इच्छा हो करें मुझे आपत्ति नहीं है।

जो भी काम ईश्वरकी इच्छासे होता है उसमें हमें आनन्द मानना चाहिये। उसमें अपनी विशेष बुद्धि लगानेकी मूर्खता नहीं करनी चाहिये। भगवान्ने आपके पुत्रको अपने पास बुला लिया तो इसमें आनन्द मानना चाहिये। लेकिन आपलोग जो भगवान्के विधानका तिरस्कार करके पुत्र गोद लेते हैं—यह बड़ी मूर्खता है। इसका परिणाम बुरा होता है। सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंकी प्राप्ति हो जाय इसीमें आनन्द मानना चाहिये। मारवाड़में कहावत है—कि *'कूआँ तेरी माँ मरी तो मरी। कूआँ तेरी माँ जियी तो जियी'* यानी कूएँपर मुँह करके जैसा शब्द आप उच्चारण करते हैं वैसी ध्वनि जैसी-की-तैसी निकलती है। भाव यह है कि प्रभुकी इच्छामें ही अपनी इच्छाको मिला देना चाहिये। जो मनुष्य भगवान्की इच्छामें आनन्द मानते हैं उनसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। लेकिन जो साधक भगवान्की आज्ञाका उल्लंघन, उनकी इच्छापर आपत्ति करता है, उसको यदि भगवान् दर्शन देनेके लिये आते हैं तो उसकी यह हालत देखकर उससे दूर भाग जाते हैं। भगवान्का जो वास्तवमें भक्त होता है, प्रतिकूलता उसके मनमें ठहर ही नहीं सकती। यदि उसमें प्रतिकूलताका भाव आ जाता है तब वह भगवान्का भक्त ही नहीं है। यह मनकी प्रतिकूलता भक्ति होनेके साथ ही नष्ट हो जाती है। मनकी प्रतिकूलतामें ही काम,

क्रोधकी सृष्टि होती है। जहाँपर ये काम, क्रोध दो अवगुण होते हैं वहाँपर फिर मद, मोह, लोभ, आलस्य आदि सभी अवगुण आ जाते हैं और उन सब अवगुणोंका परिणाम होता है—दुःख। भगवान्‌के भक्तके सामने और पासमें ये अवगुण ठहर ही नहीं सकते। वह तो हर समय मुग्ध रहता है। भक्त प्रह्लादमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, दुःख, चिन्ता, शोक, भय आदि इन सबका नामोनिशान भी नहीं था, उनके हृदयमें तो केवल भगवान्‌की भक्तिका ही वास था। जिस भगवान्‌के भक्तकी भगवान्‌में श्रद्धा, प्रेम, विश्वास एवं भक्ति होती है, उसका अपने आपको भक्त कहलानेका दावा सच्चा है। उसके पास काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी अवगुण निकट नहीं आ सकते। तुलसीदासजी भक्तिके प्रकरणमें बतलाते हैं—

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

अर्थात् जिस भक्तके हृदयमें श्रीरामकी भक्तिरूपी मणि-रत्नका निवास है, उसे लेशमात्र, गंधमात्र दुःख स्वप्नमें भी नहीं हो सकता।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

भक्तिरूपी मणिका जिसके हृदयमें निवास होता है उसके निकट काम-क्रोधादि नहीं जाते हैं। सूर्यके पास अन्धकार नहीं आ सकता, उसी प्रकार वे अवगुण उसके पास नहीं आ सकते।

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥

उसके लिये विष ही अमृतके समान बन जाता है। उसके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, क्योंकि उस भक्तसे चाहे कोई मित्रता रखे या शत्रुता, उसका सबके प्रति समान भाव है। शत्रुता करनेवालेके साथ वह शत्रुता नहीं करता। चाहे पत्थर दिल भी

क्यों न हो, उसके व्यवहारके कारण वह पिघल जाता है। उसको विष पिला दिया जाय तो वह भी उसके लिये अमृत बन जाता है। प्रह्लादकी माँको विषका प्याला देकर हिरण्यकशिपु प्रह्लादके पास भेजता है कि प्रह्लादको विष देकर मार दे, वह मेरे शत्रुसे प्रेम करता है। प्रह्लादकी माँ प्रह्लादके पास जाती है, रोने लगती है कि आज मेरे पुत्रको विष पिलाना पड़ रहा है। प्रह्लाद माताकी भय-शोकपूर्ण मुद्रा देखकर पिताकी करनीको समझ गया। मातासे कहा—माँ तू जरा भी भय मत कर। पिताजीने मेरे लिये जो आदेश दिया है उसका पालन करना चाहिये। प्रह्लाद उस विषको पी गये। वह विष भी उनके लिये अमृत बन गया। भक्तिरसमें पगी मीराजीके पास राणाजीने विषका प्याला भेजा। मीरा उस विषको पी गयी। विष भी मीराके लिये अमृत बन गया। यह भक्तिकी महिमा है। जिसको मनकी प्रतिकूलतामें दु:ख या क्रोध आता है, वह भगवान्‌का भक्त नहीं हो सकता। भगवान्‌के भक्तकी पहचान यही है कि उसका मनकी प्रतिकूलतामें, काम, क्रोध, लोभ, दु:ख, चिन्ता, भय, शोक आदिकी कठिन परिस्थितिमें सर्वदा समभाव रहता है। उसको दु:ख, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या आदि कुछ भी नहीं हो सकते। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अपने भक्तके लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

(गीता १२। १५)

जिससे किसी भी प्राणीको उद्वेग नहीं होता, जिसको किसी भी प्राणीके प्रति उद्वेग नहीं होता, ऐसा हर्ष-अमर्ष, भय, उद्वेगसे जो रहित है वह भगवान्‌का भक्त है, भगवान्‌को प्यारा है।

भगवान्ने ये भक्तके लक्षण बतलाये। जिसमें ईर्ष्या, द्वेष एवं भय, उद्वेगादि विद्यमान हैं, वह भगवान्का भक्त नहीं है। वह किसका भक्त है। वह तो मायाका भक्त यानी मायाका दास है। उसको भगवान्का दास नहीं समझना चाहिये। जबतक मनके प्रतिकूलकी प्राप्तिमें ईर्ष्या, भय, दुःख, द्वेष, उद्वेग, चिन्ता, द्वेषबुद्धि आदिका भाव पैदा हो जाता है, तबतक वह भगवान्का भक्त नहीं कहला सकता। जो भी कुछ होता है वह सब कुछ भगवान्की इच्छासे होता है। इस प्रकार मान लेनेपर भय, शोक, क्रोध, चिन्ता एवं द्वेषभाव भक्तके निकट भी नहीं आ सकते। इस बातको आप अपने विषयमें घटा लीजिये।

मान लीजिये मैं जिसको अपना आदमी मानता हूँ, उसको बिना पूछे ही उनके लिये जो बात तय कर दूँ, जो भी कुछ फैसला कर दूँ, उसको आनन्द होना चाहिये। वह तो समझेगा जयदयालका मुझपर कितना अपनत्व—प्रेमभाव है। मेरे हितकी बात मुझको बिना पूछे ही कर देता है। इसी प्रकार मान लीजिये कहीं चन्दे-चिट्ठेका काम है। मैंने घनश्यामसे बिना पूछे ही एक सौ रुपये लिखवा दिये, उसमें घनश्यामको प्रसन्न होना चाहिये या नाराज होना चाहिये? क्योंकि मेरे द्वारा उनकी पूँजीमेंसे एक सौ रुपये निकाल लिये गये। उसका धन घटा, परन्तु घनश्याम नाराज नहीं होता, समझता है इसमें मेरा हित है। इसी प्रकार घनश्यामके पुत्रको मैंने चार थप्पड़ मार दिये, वह रोता हुआ घनश्यामके पास गया। घनश्यामने पूछा तुमको किसने मारा? वह कहता है जयदयालजीने। घनश्याम समझता है लड़केको पीटनेमें उसका हित ही था। लड़का रोता है लेकिन घनश्यामका जयदयालके प्रति किसी प्रकारका द्वेषभाव नहीं

होता। इसी प्रकार समझना चाहिये कि जो मनुष्य अपने धनका, पुत्रका नाश होनेपर प्रसन्न होता है तब तो वह भगवान्‌का भक्त है, अन्यथा वह भगवान्‌की भक्तिके बहाने लोगोंको ठगता है।

जो भगवान्‌का भक्त होता है वह सब प्रकारसे भगवान्‌की कार्यवाहीको देखकर प्रसन्न होता है। भगवान्‌की भक्तिमें चिन्ता एवं शोकादिकी कोई भी गुंजाइश नहीं रहती। इस प्रकार हर एकको अपने मनके प्रतिकूल कामको भगवान्‌की आज्ञा एवं भगवान्‌के मनके अनुकूल समझकर खूब प्रसन्नता होनी चाहिये, खूब आनन्दका भाव करना चाहिये। एक लौकिक कथा बतलायी जाती है—

एक समय शिवजी महाराज पार्वतीजीके सामने अपने भक्तोंकी प्रशंसा कर रहे थे। पार्वतीजीने कहा—मुझको भी भक्तोंके दर्शन कराइये। शिवजीने कहा—बहुत ठीक है। कल तुमको भक्तोंके दर्शन कराने साथ ले चलूँगा। शिवजी-पार्वतीजीने ब्राह्मण-ब्राह्मणीका स्वरूप धारण किया और भक्तके यहाँ गये। शिवजीके भक्तने उनका खूब स्वागत किया। शिवजीका भक्त गरीब था। घरमें दो बकरियाँ थी। दूध निकालकर भक्तने खीर बनायी और शिवजी-पार्वतीजीको खूब प्रेमसे भोजन करवा दिया। भोजन करनेके बाद शिवजी-पार्वतीजी चले गये। रास्तेमें पार्वतीजीने कहा—भक्त तो बहुत अच्छा मालूम देता है। उसको बदलेमें कुछ देना चाहिये, कोई उपकार करना चाहिये। बड़े आदमी यदि अपनेसे छोटोंकी छोटी चीज भी ग्रहण करते हैं तो उसके बदलेमें उसको कीमती चीज दिया करते हैं। फिर आप तो त्रिलोकीके मालिक हैं, आपकी जो इच्छा हो वही चीज उस भक्तको दे सकते हैं। शिवजी महाराजने कहा—ठीक है, उस भक्तकी वे दो बकरियाँ कल मर जायँगी। पार्वतीजीने कहा—

यह तो उसके लिये शाप हो गया, इसको वरदान किस प्रकार मान लिया जाय। शिवजीने कहा—जो बात हितकी होती है वही वरदान कहलाती है। पार्वतीजीने पूछा—इसमें भक्तका क्या हित हुआ। शिवजीने कहा—तुमको दिखला दूँगा। दो महीने बाद फिर शिवजी महाराज पार्वतीजीको साथ लेकर उस भक्तके यहाँ गये। पहले तो बकरियाँ थीं तब भक्त उनको खिलाना, चराना, दूध निकालना आदि कामोंमें समय बिता दिया करता था, किन्तु अब बकरियाँ तो मर गयीं थीं, अब तो वह शिवजीके ध्यानमें मस्त था। सामने शिवजी-पार्वतीजी खड़े हैं, लेकिन भक्त तो ध्यानमें मस्त है। उसे क्या परवाह कि शिवजी-पार्वतीजी भूखे हैं या प्यासे हैं, उनको आसन देना चाहिये, सत्कार करना चाहिये, आदि। तब शंकर भगवान्‌ने पार्वतीजीसे कहा—पहले इसके दो बकरियाँ थीं, उसका सारा समय उनकी सेवामें लग जाता था। अब वह झंझट मिट गयी, अब रात-दिन मेरा ही ध्यान करता है। पहले तो मेरी तथा बकरियाँ दोनोंकी सेवा होती थी, अब सोलह आने मेरी ही सेवा होती है। इसकी बकरियाँ नहीं मारी जातीं तो बकरियोंसे बकरियोंका समुदाय बढ़ जाता। कुछ दिनोंके बाद बकरियोंका झुंड-का-झुंड हो जाता, फिर जो आठ आना मेरी सेवा किया करता था वह सब बट्टे खाते चली जाती। फिर दिनभर बकरियोंकी सेवा करता रहता। तब शिवजीकी बात पार्वतीजीके समझमें आ गयी, बोलीं—आप ठीक कहते हैं।

आजकल यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिस स्त्रीके पाँच-छः बच्चे हो जाते हैं उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। उन लड़कोंकी बहुएँ आती हैं। उनके और सन्तान वृद्धि होकर दिनभर घरमें म्याऊँ-म्याऊँ मची रहती है। इससे उन लोगोंकी

शान्ति तो नष्ट होती ही है, अपितु आसपासके घरवालोंकी भी शान्ति नष्ट हो जाती है। इसलिये सन्तानसे किसी प्रकारकी सुख-शान्ति नहीं है। अपने लिये तो भगवान् जो भी कुछ कर देते हैं, उस भगवान्के विधानमें समभावसे रहनेपर ही सुख एवं शान्तिकी उपलब्धि हो सकती है। यही भगवान्के भक्तके लक्षण हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण बतलाते हैं—

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १४)

जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

भगवान्के हर विधानमें सन्तुष्ट रहनेवाला ही योगी है। भगवान्ने योगी शब्दका व्यापक अर्थ किया है। भक्तिमार्गवाला भक्त भी योगी है। गीतामें अठारह अध्याय हैं। सब अध्यायोंके नामोंमें योग शब्द अन्तमें लगाया गया है। जैसे सांख्ययोग, विभूतियोग, विश्वरूपदर्शनयोग—ये भगवान्ने गीताके अध्यायोंके नाम बतलाये हैं। इतना ही नहीं, भगवान्ने पहले अध्यायका नाम रखा है—'विषादयोग'। विषाद यानी चिन्ता-शोक भी योगके नामसे बतलाया है। सांख्ययोग एवं पुरुषोत्तमयोग नाम तो ठीक है, लेकिन विषादमें भी योग बतलाया गया है। भगवान्का भक्त हर समय आनन्दमें मग्न रहता है। कहते हैं—*'सदा दिवाली संतके आठों पहर अनन्द।'* योगीकी दृष्टिमें मनके अनुकूल एवं प्रतिकूल अवस्थामें किसी प्रकारका हर्ष-शोक नहीं होता। वह तो हर समय, हर स्थितिमें आनन्दमें मग्न रहा करता है।

महापुरुषकी बुद्धिका निश्चय अटल होता है। चाहे उसको काट ही डाले, लेकिन वह अपनी बुद्धिके निश्चय यानी धर्मको कभी नहीं छोड़ सकता। गुरु गोविन्दसिंहके दो बच्चोंको औरंगजेबने जीते-जी दीवालमें चुनवा दिया, लेकिन वे अपनी बुद्धिके निश्चय, अपने धर्मपर अटल रहे। उन्होंने उसका धर्म स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार भगवान्में मन एवं बुद्धिको लगा देनेसे ही भक्त भगवान्को प्रिय होता है। भक्तका पहला लक्षण है—हर समय सन्तोष, आनन्द-ही-आनन्दमें रहे चाहे मनके अनुकूल या चाहे मनके प्रतिकूल—विपरीत अवस्था हो, उसकी सबमें समान स्थिति है। इस प्रकारके भक्तके सम्पर्कसे दूसरोंको भी सुख एवं आनन्दकी उपलब्धि हो सकती है। इस प्रकार भगवान्के हर विधान सुख, दुःख आदि सब प्रकारके द्वन्द्वोंमें आनन्द मानना चाहिये।

जो भी कुछ अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति हो उसको भगवान्का विधान समझना चाहिये। उससे भी बढ़कर वह साधक है जो मनके प्रतिकूल एवं अनुकूल परिस्थितिको भगवान्का दिया गया पुरस्कार समझता है। उससे भी और श्रेष्ठतम साधक वह है जो हर एक स्थितिको ऐसा मानता है कि यह सब कुछ भगवान्की लीला हो रही है। इस प्रकारका उच्चतम भाव पैदा हो जानेके बाद भगवान्के आनेमें विलम्ब नहीं हो सकता। फिर तो भगवान् तुरन्त आकर दर्शन दे सकते हैं।

भगवान्के हर विधानमें अपना हित-ही-हित है। चाहे हित दिखलायी पड़े या नहीं, इस प्रकार अपना हित-आनन्द मान लेनेपर वास्तवमें आपको आनन्द दिखलायी पड़ने लग जायगा। किसी भी वस्तुको जब तत्त्वसे जानना होता है, तब पहले उसको

मानना पड़ता है। उसके बाद उसको जानना होता है। एक उदाहरण देकर समझाया जाता है—

एक छोटा लड़का है। माँ-बापने उसका नाम महादयाल रख दिया। माता-पिता कहते हैं—महादयाल रोटी खा, यहाँ आ, वहाँ बैठ। वह कुछ भी नहीं समझता। धीरे-धीरे वह दो सालका हो गया। अब वह उस बातको समझने लगा कि मेरा नाम यह है। अब वह अपने आपको महादयाल समझने लगता है। कुछ दिन बाद तो अब इतना समझने लगता है कि बस, मैं ही महादयाल हूँ। बात वास्तवमें झूठी है, पर घरवालोंने झूठा अभ्यास करवा दिया, वह अपने आपको महादयाल समझने लग गया।

जैसे मेरा नाम जयदयाल है। वास्तवमें जन्मके पहले जयदयाल नाम नहीं था। माताके पेटमें भी जयदयाल नाम नहीं था। जन्मके बाद भी नाम नहीं था। पैदा हुआ किसीने कहा—गीगला है, आरम्भका नाम तो गीगला है, बादमें परामर्श करनेके बाद जयदयाल नाम रख दिया। फिर भी मैं समझता नहीं था। बार-बार कहनेपर समझने लगा कि मुझे जयदयाल कहते हैं। मैं फिर अपनेको जयदयाल मानने लग गया। यदि जयदयालको कोई गाली देता है तो जयदयाल मरने-मारनेको तैयार हो जाता है कि वह मुझे गाली देता है। वस्तुतः वह जयदयाल तो है ही नहीं, फिर कोई लाख गाली निकाले निकालता रहे, हमें क्यों नाराज होना चाहिये, क्यों सिर फोड़ना चाहिये। वस्तुतः यह अज्ञान है। उसका अपमान किया तो कहता है मेरा अपमान है। क्या आप शरीर हैं? तुम शरीर नहीं हो, तुम तो आत्मा हो और आत्माका कोई मान-अपमान कर नहीं सकता। कोई शरीरका अपमान करता है तो करने दीजिये। देहमें आसक्ति रहनेके कारण

देहके सत्कारको जीवात्मा अपना सत्कार मान बैठता है। यही अज्ञान है। कोई नामकी निन्दा या स्तुति करता है कि जयदयाल बड़ा अच्छा व्यक्ति है। उसने अमुक काम बुरा किया। अमुक काम अच्छा किया। यह निन्दा-स्तुति तो जयदयालकी हुई, मैं तो जयदयाल हूँ नहीं। नामकी निन्दा-स्तुतिको अपनी निन्दा स्तुति क्यों मान लेना चाहिये। अपने देह या अपने नामका अपमान यह मनुष्यको नरकमें ले जानेवाला होता है। इसी कारण मान-अपमान, सुख-दु:ख, हर्ष-शोक, निन्दा-स्तुतिमें विकार हो जाता है। इन द्वन्द्वोंसे जो अतीत होता है उसको गुणातीत कहते हैं। यह जो सात्त्विक, राजस, तामस—तीन गुणोंवाला शरीर है, उस शरीरकी निन्दा-स्तुतिको जो अपनेसे अतीत समझता है वह गुणातीत है और जो इनमें आसक्त होता है वह अज्ञानी है।

नारायण! नारायण!! नारायण!!!